रवीन्द्र-साहित्य

सत्रहवाँ भाग

'तपती'

नाटक

'वैकुण्ठका पोथा'

'स्वर्गीय प्रहसन'

प्रहसन

धन्यकुमार जैन

रवीन्द्र-साहित्य

सत्रहवाँ भाग

अनुवादक
धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थागार
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट
बड़ाबाजार : कलकत्ता - ७

पाठकोंसे

अपने अनुवाद और प्रकाशनके सम्बन्धमें कुछ भी कहनेकी मेरी इच्छा नहीं थी। मुझे आशा थी कि पाठक स्वयं ही हिन्दीमें रवीन्द्रनाथका रथ चला ले जायेंगे। किन्तु आज कुछ कहनेकी जरूरत आ पड़ी है। और विना कहे पाठक जान भी कैसे सकते हैं कि यह प्रकाशन 'श्रेयान्सि बहु विघ्नानि' का कितना बड़ा दृष्टान्त बना हुआ है! पहले तो, जिस दिनसे इस ग्रन्थमालाका प्रकाशन शुरू किया, उसी दिनसे मेरा प्रिय मानस-पुत्र (दौहित्र) रवीन्द्रकुमार बीमार पड़ा, और लगातार सवा दो साल तक मुझे उसकी तीमारदारी करते-हुए, और यह जानते-हुए कि 'श्मशानकी राख'की सेवा कर रहा हूं, उसके पास बैठकर ही अनुवाद करते रहना पड़ा। दूसरे, अपना सर्वस्व बेचकर अत्यन्त कम मूलधनसे इसका प्रकाशन शुरू करना पड़ा। इससे पद-पदपर आर्थिक कठिनाइयाँ बनी ही रहती हैं। भीतर शोक और बाहर हाथ-तंग होनेपर भी मै रुक नहीं सकता, कारण, मै इस कार्यको अपना अन्तिम-जीवन-धर्म समझकर ही कर रहा हूं, यह मेरा मरणव्रत है।

रवीन्द्रनाथने एक जगह लिखा है, 'दरिद्रका मनोरथ मनके बाहर अचल हो जाता है', किन्तु मेरे मनने उसके विपरीत दुस्साहस किया, रवीन्द्र-साहित्य-प्रकाशन-रथको उसने चलाया ही, और सत्रहवें भाग तक चला लाया। किन्तु अब वह कुछ थकान-सी महसूस कर रहा है।

अब, एकमात्र पाठकोंका ही सहारा है। पाठक यदि इसका अधिकसे अधिक मौखिक प्रचार करें, तो मुझे पूरी आशा है कि रवीन्द्र-साहित्य भारतके प्रत्येक विद्यालय, महाविद्यालय, संग्रहालय और साधारण पाठागार तक पहुँच सकता है। मेरे पास इतनी अर्थ संगति नहीं कि मै विज्ञापन कर सकूं, ऋण और ब्याजके बोझसे ही मै दबा जा रहा हूं। आशा है, मेरे बोझको हलका करनेमें पाठक और पुस्तकालय यथासाध्य सहारा देंगे।

निस्सन्देह यह भारत-राष्ट्रका श्रेष्ठ साहित्य है, और राष्ट्रभाषामें इसकी स्वयंसिद्ध आवश्यकता है; इसलिए मुझे पूरी आशा है कि स्वाधीन-राष्ट्रका शिक्षा-विभाग और प्रौढ-शिक्षा-प्रसारके अधिकारी भी इसके महत्त्वको समझकर मेरे इस मरणव्रतमें सहयोग देंगे। —**धन्यकुमार जैन**

तपती

नाटक

भूमिका

'राजा और रानी' मेरी कम-उमरकी रचना है। नाटक लिखनेका वह मेरा प्रथम उद्यम था।

सुमित्रा और विक्रमका जो सम्बन्ध है, उसमें एक विरोध है, सुमित्राकी मृत्युसे उस विरोधका समाधान हुआ है। विक्रमकी जो प्रचण्ड आसक्ति सुमित्राको पूर्णरूपसे ग्रहण करनेमें अन्तराय थी, सुमित्राकी मृत्युसे उस आसक्तिका अवसान हो जानेपर, उस शान्तिमें ही विक्रमके लिए सुमित्राका सत्य उपलब्ध होना सम्भव हुआ। यही 'राजा और रानी' की मूल वात है।

रचनाके दोषसे यह भाव उसमें परिस्फुट नहीं हो पाया। कुमार और इलाके प्रेमके वृत्तान्तने अपनी अप्रासङ्गिकतासे नाटकको वाधा पहुँचाई है, और नाटकके शेष-अंशमें कुमारने जो असंगत प्रधानता प्राप्त की है उससे नाटकका विषय हो गया है भाराक्रान्त और द्विधा-विभक्त। इस नाटकके अन्तमें कुमारकी मृत्युके द्वारा चमत्कार उत्पादनकी चेष्टा प्रकट हुई है,- यह मृत्यु आख्यान-धाराका अनिवार्य परिणाम नही है।

बहुत दिनोंसे 'राजा और रानी' की यह त्रुटि मुझे पीड़ा दे रही थी। कुछ दिन पहले, श्री गगनेन्द्रनाथके अनुरोधसे, इसे यथासम्भव संक्षिप्त और परिवर्तित करके अभिनय-योग्य बनानेकी कोशिश की थी। देखा कि ऐसा असम्पूर्ण संस्कार करके इसका संशोधन सम्भव नहीं है। और, तव यह निश्चय कर लिया कि इस नाटकको शुरूसे आखिर तक बगैर लिखे इसकी सद्‌गति नहीं हो सकती। अन्तमें, नये रूपमें लिखकर, आज इस नाटकके सम्बन्धमें यथासाध्य अपना दायित्व पूरा कर रहा हूँ।

पुराने नाटकको जव नये रूपमें लिखा गया, तव पुराने मोहको दूर करके उसके नये परिचयको पक्का-पुख्ता करनेके लिए अभिनय करके दिखाना जरूरी हो गया। और उसके उद्योगमें प्रवृत्त होना पड़ा। इस उपलक्ष्यमें नाट्य-मञ्चके आयोजनकी वात संक्षेपमें समझा देना आवश्यक है।

भूमिका

आधुनिक यूरोपीय नाट्यमञ्चके सजानेमें दृश्यपट एक उपद्रवके रूपमें घुस पड़ा है। यह लड़कपन है। लोगोंकी आँखोंको भुलावा देनेकी कोशिश है। साहित्य और नाट्यकलामें इसे बाहुबलका प्रयोग कहा जा सकता है। यह जबरदस्ती है। कालिदास 'मेघदूत' लिख गये हैं, उनका वह काव्य छन्दोमय वाक्योंकी चित्रशाला है। रेखा-चित्रकार कूंची हाथमें लेकर उसके आस-पास यदि अपनी रेखाङ्क-व्याख्या चालू कर दें, तो उससे जैसे कविके प्रति अन्याय होगा वैसे पाठकोंके प्रति भी अश्रद्धा प्रकट होगी। अपना कवित्व ही कविके लिए यथेष्ट है, बाहरकी सहायता उनके लिए सहायता ही नहीं, बल्कि व्याघात है ; और अधिकांश स्थलोंपर स्पर्धा है।

'शकुन्तला'में तपोवनका एक भाव काव्यकलाके आभासमें ही है। वही पर्याप्त है। अङ्कित चित्रके द्वारा अत्यधिक निर्दिष्ट न होनेसे ही दर्शकके मनपर बिना बाधाके वह अपना काम कर सकता है। नाट्यकाव्य दर्शककी कल्पनापर अपना दावा रखता है, चित्र उस दावेको घटा देते हैं ; इससे नुकसान होता है दर्शकोंका ही। असलमें अभिनय चीज है वेगवान, प्राणवान, गतिशील , दृश्यपट है उससे विपरीत , अनधिकार प्रवेश करके सचलतामें वह हो जाता है मूक, मूढ, स्थाणु ; दर्शकोंकी चित्त-दृष्टिको अपने निश्चल घेरेमें घेरकर उसे वह अत्यन्त संकीर्ण कर रखता है। मन जिस जगह अपना आसन लेगा उस जगह एक पटको बिठाकर मनको बिदा कर देनेका नियम इस यान्त्रिक युगमें प्रचलित हुआ है, पहले नहीं था। हमारे देशमें चिर-प्रचलित 'यात्रा' या 'लीला'में लोगोंकी भीड़से स्थान संकीर्ण जरूर हो जाता है, किन्तु पटके औद्धत्यसे मन संकीर्ण नहीं होता। इसीलिए जिस नाट्याभिनयमें मेरा कोई हाथ रहता है वहाँ क्षण-क्षणमें दृश्यपट चढ़ाने उतारनेके लड़कपनको मैं प्रश्रय नहीं देता। कारण, वह वास्तव-सत्यका भी मजाक उड़ाता है और भाव-सत्यको भी बाधा पहुँचाता है।

भाद्र, १६८६]

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

नाटकके पात्र

विक्रमदेव	जालन्धरके राजा
सुमित्रा	जालन्धरकी रानी
नरेश	विक्रमके वैमात्र भ्राता
विपाशा	सुमित्राकी सखी
देवदत्त	राजाके सखा
नारायणी	देवदत्तकी स्त्री
गौरी, कालिन्दी, मंजरी	राज-प्रासादकी परिचारिकाएँ
कुमारसेन	काश्मीरके युवराज
चन्द्रसेन	कुमारके काका
शंकर	कुमारका पुराना वृद्ध भृत्य
त्रिवेदी	जालन्धरके राज-पुरोहित
भार्गव	काश्मीरके मार्तण्ड-मन्दिरके पुरोहित

रत्नेश्वर, शिखरिनी, कुंजलाल और जनता आदि

तपती

१

भैरव - मन्दिरका प्राङ्गण
देवदत्त और उपासकगण

गीत

सकल खर्वता भस्म करो, प्रभु, क्रोध-दाहसे अपने ;
हे भैरव, दो शक्ति भक्तको, सफल करो सब सपने।
दूर करो महारुद्र,
जो-कुछ है मुग्ध, क्षुद्र,
दूर करो भय तुच्छ मरणका, प्राणोंको दो तपने,
सफल करो सब सपने।
दुखका मन्थन करके पावें अमृत हम जीवनका,
आशंका कर दूर मौतकी, पावें तेज तपनका।
दीप्त प्रचण्ड तेज तेरा जो झरा करे निर्झर-सा,
प्रस्तर-शृङ्खल तोड़, त्यागका बहे प्रवाह प्रखर-सा।
मृत्यु-भीतिको दूर करो, प्रभु, पापोंको दो खपने,
हे भैरव, दो शक्ति भक्तको, सफल करो सब सपने।

[देवदत्तके सिवा सबका प्रस्थान

विक्रमका प्रवेश

विक्रम—इसका क्या अर्थ ? आज मीनकेतुकी पूजाका आयोजन किया गया है। भैरवके स्तवसे तुमलोगोंने उसकी भूमिका क्यों की ?

देवदत्त—राजाकी इस पूजाको जन-साधारण अभी तक स्वीकार ही नहीं कर पा रहे हैं। उन्हें डर लग रहा है।

विक्रम—क्यों, उन्हें डर किस बातका ?

देवदत्त—तुम्हारा साहस देखकर वे स्तम्भित हो गये हैं। जिनके तपोवनमें पचशर भस्म हुए हैं, उन्हींके पूजाके वनमें कन्दर्पकी पूजा ! इसका परिणाम क्या होगा, इस संकटकी भी कल्पना की है कभी ?

विक्रम—कन्दर्प उस बार आये थे अपराधीकी तरह छुपकर, इस बार उन्हें बुलायेंगे हम प्रकाश्यमें, अबकी बार वे आयेंगे देवताके योग्य नि संकोचताके साथ, सिर उठाकर ध्वजा उड़ाते-हुए। असलमें संकटका डर ही संकटको बुला लाता है।

देवदत्त—महाराज, आदिकालसे ही तो इन दोनों देवताओंमें विरोध चला आ रहा है।

विक्रम—इसमें नुकसान है आदमीका ही। एक देवता दूसरे देवताके प्रसादसे मनुष्यको वंचित करते हैं। ब्राह्मण, हमेशासे तुमलोग शास्त्र मिला कर देव-पूजाका व्यापार करते आये हो, इसीसे देवताओंके विषयमें तुमलोग कुछ भी नहीं जानते।

देवदत्त—यह ठीक बात है, देवताओंके साथ हमारा परिचय पोथियोंसे ही हुआ है। हम श्लोकोंकी भीड़के धक्के खाते हैं, दक्षिणा पाते हैं : किन्तु उनके पास पहुचनेका समय नही पाते।

विक्रम—मेरे मीनकेतु अशास्त्रीय हैं, अनुष्टुभ-त्रिष्टुभका बन्धन नहीं मानते। वे प्रलयके देवता हैं। रुद्र-भैरवके साथ ही उनका अन्तरंगका मेल है, पिनाकने छद्मवेश धारण किया है उनके पुष्प-धनुषमें।

देवदत्त—महाराज, उस देवतासे यथासाध्य बचते रहनेकी ही कोशिश करता हूँ। आभाससे जितनी भी जान-पहचान हुई है उससे भैरवके साथ कमसे कम वेश-भूषामें उनका यथेष्ट सादृश्य नहीं दिखाई देता।

विक्रम—इसका कारण है अब तक रतिने अपने ही अंशसे कन्दर्पको सजाया है। उन्हें रंगा है अपने ही काजलकी कालिमासे, अपने ही कुंकुमकी रक्तिमासे, अपनी ही नीली कंचुलिकाकी नीलिमासे। वे रमणीके लालन और लालित्यसे आच्छन्न है, उसीमें तल्लीन हैं, इसीसे तो वज्रपाणि इन्द्रकी सभामें वे

लज्जित भावसे चरकी वृत्ति करते हैं। इसीसे तो रुद्रके पौरुषकी आगने उन्हें भस्म कर दिया था।

देवदत्त—वह इतिहास तो खतम हो चुका। अब फिर क्यों उस जले देवताको लेकर उपद्रव खड़ा कर रहे हैं? फिरसे उन्हें जलाना है क्या?

विक्रम—नहीं, उन्हें मृत्युमेंसे ही जिलाना होगा। उसके लिए चाहिए वीरका बल। तुम्हारे भैरवकी स्तुति सम्पूर्ण ही नहीं होगी अगर हमारे मीनकेतुकी स्तुति उसके साथ न जोड़ी जाय।

छोड़ दो अपमान - शय्या भस्मकी, हे पुष्पधनु,
छीन लो रुद्रकी उस वह्निसे अपना दिव्य तनु।
अमर नहीं, मर हैं जो, धरामें वे जायँ मर,
जागो तुम अविस्मरणीय ध्यानकी मूर्ति धर।
जो कुछ रूढ है, मूढ़ है और स्थूल तव,
दग्ध हो जाय सब
सदा बने रहो तुम नित्य नव।
मृत्युसे जागो, हे पुष्पधनु,
हे अतनु, वीरके तनुमें लो अपना तनु।

—तुमलोग जानते नहीं, महेश्वरने मदनको अग्निवर दिया था, मृत्युसे ही उन्होंने उन्हें अमर किया है। अनङ्ग ही अमृत देनेके अधिकारी हुए हैं।

जिस मृत्युको मृत्युंजयने दिया है मार
उस मृत्युसे ही लाओ तुम अमृत-सार।
वही दिव्य, दीप्यमान दाह
उन्मुक्त करेगा अग्नि-उत्सका प्रवाह।
उठो, मृत्युसे उठो, हे पुष्पधनु,
हे अतनु, वीरके तनुमें लो अपना तनु।

—मीनकेतुका मार्ग सहज मार्ग नहीं, पुष्प-विकीर्ण भोगका मार्ग नहीं है वह, वह आरामकी तृप्ति नहीं देता।

देवदत्त—सुनके डर लगता है। किन्तु जिससे संकट उपस्थित होता है, उसके मूलमें है अनंगदेव। जिस घरको वे अपनी चरण-रजसे चिह्नित कर देते है, उस घरमें फिर वे अन्य किसी देवताको प्रवेश नहीं करने देते। इसीसे पूजनीयोंके मनमें ईर्षा पैदा होती है।

विक्रम—मालूम होता है बात मुझे ही लक्ष्य करके कही गई है। तुम्हारा साहस बढ रहा है।

देवदत्त—राजाके साथ मित्रता करना दुःसाहसका चरम है। भाग्य-दोषसे ही राजाका मित्र दुर्मुख हुआ है। इच्छासे नहीं।

विक्रम—तो खोलो मुँह। साफ-साफ कहो, प्रजा हमारे विरुद्ध क्या कहती है?

देवदत्त—कहती है, अन्तःपुरके अवगुण्ठन-तले सारे राज्यमें आज प्रदोषान्धकार छा गया है। राजलक्ष्मी राज्ञीकी छायासे आज म्लान हो रही हैं।

विक्रम—दुर्मुख, प्रजानुरंजनके लिए फिर एक बार सीताका निर्वासन चाहते हो क्या?

देवदत्त—निर्वासन तो तुम्हीं देना चाहते हो उन्हें, अन्त पुरमें, प्रजा तो चाहती है उन्हें सर्वजनके राज-सिंहासनमें। उनके हृदयका सम्पूर्ण अंश तो तुम्हारा नहीं है, एक अंश प्रजाका भी है। वे क्या केवल राजवधू हैं? वे लोकमाता भी है।

विक्रम—देवदत्त, अंशको लेकर ही सारा विरोध है। उसीको लेकर कुरुक्षेत्र हुआ। लो, वे आ रही हैं, राजवधूका अंश लिये आर ही हैं या लोकमाताका?

देवदत्त—तो मै विदा होता हूँ, महाराज। [प्रस्थान

रानी सुमित्राका प्रवेश

विक्रम—देवी, कहाँ चलीं? मेरी भी सुनती जाओ!

सुमित्रा—क्या है महाराज!

विक्रम—एक शुभ-संवाद है।

सुमित्रा—क्या, सुनूं भी तो?

विक्रम—लोकनिन्दाके परम गौरवसे आज मै धन्य हुआ हूं।

सुमित्रा—निन्दा कैसी?

विक्रम—लोग कहते हैं, तुम्हारे प्रेममें मैंने कर्तव्यको भी तुच्छ कर दिया है। इतनी बड़ी बात है!

सुमित्रा—जो कहते हैं उनकी बात झूठ हो।

विक्रम—अक्षय हो यह सत्य। इतिहासमें विख्यात हो, कवि-कण्ठसे आख्यात हो, रसतत्त्वमें व्याख्यात हो, अधर्मोंकी निन्दा-प्रशंसाके अतीत हो।

सुमित्रा—महाराज, जो प्रेम राज-कर्तव्यके भी ऊपर है उसे ग्रहण करें देवता। उसे क्या मै ले सकती हूँ?

विक्रम—देवताका जो प्राप्य है उसे वे लेंगे तुम्हींमेंसे। तुम्हारे मुँहपर परमाश्चर्यको देख रहा हूँ। लज्जा न करो, सुनो मेरी बात। यशके लोभसे जो देश जय करते-फिरते हैं, लक्ष्मीके वे हैं विदूषक। उनकी आयु वृथा बीत जाती है, कीर्ति भी चिरकाल नहीं रहती। लक्ष्मी बैठी-बैठी हँसा करती हैं। मैं उनमेंसे नहीं हूँ। काश्मीर जाकर युद्ध किया था मैंने, किन्तु वह तुम्हारी ही साधनामें।

सुमित्रा—तुम्हारी युद्धयात्रा सफल हुई है; अब और क्या चाहते हो?

विक्रम—वीणा तो पा गया। संगीतसे उसपर अधिकार किस शुभ मुहूर्तमें होगा? सुर नहीं मिला पा रहा हूँ। पाकर भी हार हो रही है पद-पदपर। भाग्यके हाथसे जो दान मिला है वह दान ही मुझे लज्जा दे रहा है।

सुमित्रा—मुट्ठीमें बन्द कर रखा है और कल्पना कर रहे हो कि मिली नहीं। पर, मै क्या तुमसे कुछ भी नहीं चाह सकती?

विक्रम—सब-कुछ चाह सकती हो,—कुछ नहीं चाहतीं इसीसे तो मेरी राज-सम्पदा व्यर्थ हो रही है।

सुमित्रा—मै चाहती हूँ अपने राजाको।

विक्रम—नहीं पाया ?

सुमित्रा—नहीं, नही पाया अपने राजाको अब तक। सिहासनसे तुम नीचे उतर आये हो इस नारीके पास। मुझे क्यो नहीं ऊपर ले चलते अपने सिहासनके पास ?

विक्रम—हृदयके सर्वोच्च शिखरपर तुम्हें आसन दिया है मैने,—उसमें भी गौरव नहीं तुम्हें ?

सुमित्रा—महाराज, मेरे विषयमें इस तरह शब्दोंको न सजाओ,—यह तुम्हारे लिए शोभा नहीं देता। इससे तो मै और उलटी छोटी बन जाती हूँ। क्या करूँगी मै इन स्तुतिवाक्योंका ! मेरा अनुरोध रखो। मै आई हूँ तुम्हारे पास प्रजाकी तरफसे प्रार्थना जताने।

विक्रम—इस उद्यानमें ? यहाँ आज तो ऋतुराजका अधिकार है। कमसे कम आज एक दिनके लिए तो उसे स्वीकार करो।

सुमित्रा—मैने तो तुम्हारी आज्ञा पालनेमें त्रुटि नहीं की, उत्सव जिससे सुन्दर हो उठे, मैने तो वही आयोजन किया है। किन्तु तुम्हारे लिए भी क्या कुछ करनेको नहीं है ? तुम वही करो जिससे उत्सव महान हो उठे, अपनी राज-महिमासे।

विक्रम—बताओ, मुझे क्या करना है ?

सुमित्रा—काश्मीरसे जो लोभियोंका दल तुम्हारे साथ आया है, आज ही उन परोपजीवियोंको आदेश दो कि वे काश्मीर लौट जायें।

विक्रम—मेरे उन विदेशी अमात्योंपर तुम्हारे मनमें क्रोध है।

सुमित्रा—सो तो है।

विक्रम—काश्मीर-विजयमें उनलोगोंने मेरा साथ दिया था, यही उसका कारण है।

सुमित्रा—हाँ, महाराज। मै समझती हूँ, विश्वासघातकोंकी शत्रुता अच्छी, उनकी मैत्री अस्पृश्य है।

विक्रम—उनका धर्म वे समझें, किन्तु मै कृतघ्न कैसे बनूँ ?

सुमित्रा—तुम्हारे पक्षमे उनलोगोंने पाप किया है, तुम क्षमा करना

चाहो तो करो ; किन्तु मेरे विपक्षमें जो अन्याय किया है, क्या मै भी उन्हे क्षमा कर दूँ ? तुम्हारी क्षमाके आश्रयमें प्रजापर जो अत्याचार किया जा रहा है, उसमें भी तुम बाधा न दोगे ?

विक्रम—झूठा अपवाद फैला रही है प्रजा। विदेशी होनेसे प्रजा उनसे ईर्षा करती है।

सुमित्रा—उसका भी तो विचार होना चाहिए।

विक्रम—इन-सब मामलोंमें तुम जब हस्तक्षेप करती हो, महारानी, तो मेरे लिए सुविचार करना कठिन हो जाता है। तुम स्वयं अभियोग कर रही हो, उसके ऊपर मै क्या किसी प्रमाणको आसन दे सकता हूँ ? तुम्हारे अनुरोध करनेपर युधाजितको मुझे बिना विचारके ही पदच्युत कर देना पड़ा। और भी अमात्य-बलि चाहिए तुम्हें ?

सुमित्रा—तो यही ठीक है। तुम न्याय-विचार न करो। मेरी ही प्रार्थना रखो। काश्मीरके उन विश्वासघातकोंने अगर कोई अपराध न भी किया हो, तो भी, मेरे रात-दिनके लज्जाके कारण हैं वे। मुझे उस लज्जासे बचाओ।

विक्रम—वे कलंक स्वीकार करके संकटको सामने रखकर मेरे पास आकर खड़े हुए थे। तुम्हारे कहनेपर भी मै उन्हें नही छोड़ सकता। देखो प्रिये, राजाके हृदयपर ही तुम्हारा अधिकार है, राजाके कर्तव्यपर नहीं, इस बातको याद रखना।

सुमित्रा—महाराज, तुम्हारे विलासमें मै संगिनी हूँ, तुम्हारे राज-धर्ममें मै कोई भी नहीं, इस बातको याद रखनेमें मुझे जरा भी सुख नहीं।

विक्रम—सुनो, सुनो, रानी !

सुमित्रा (लौटकर)—क्या है, कहो।

विक्रम—तुम जाग क्यों नहीं रही हो ? किस लिए है तुम्हारा यह सूक्ष्म आवरण ? अपनी सम्पूर्ण राज-शक्तिसे भी इसे मैं नहीं हटा सका। अपनेको प्रकट करो, – दिखाई दो, पकड़ाई दो, रानी ! मुझे इस अत्यन्त अदृश्य वंचनासे विड़म्बित न करो।

सुमित्रा—मैं भी तुमसे यही बात कहती हूं। तुम राजा हो, मै तुम्हारे सम्पूर्ण प्रकाशको नहीं देख पा रही हूं, – तुम्हारी शक्तिको अन्धकारने ढक रखा है। तुम जागे नहीं। तुम मुझे छीन लाये हो काश्मीरसे, – मेरे उस अपमानको मिटा दो, – मुझे रानीका पद देना होगा।

विक्रम—अच्छा अच्छा, अपना सम्पूर्ण राज-कोष मै तुम्हारे चरणोंमें उँड़ेले देता हूँ, – तुम प्रजाको दान करना चाहती हो, करो दान, जितना जीमें आये। तुम्हारे दाक्षिण्यकी बाढ़ आ जाय इस राज्यमें।

सुमित्रा—क्षमा करो, महाराज, तुम्हारा कोष तुम्हारा ही बना रहे। मेरे शरीरके अलंकार बने रहें मेरी प्रजाके लिए। अन्यायके हाथसे प्रजाकी रक्षाका 'महिषीका अधिकार' अगर न हो मुझे, तो यह-सब तो बन्दिनीकी वेश-भूषा है मेरे लिए, – इसे मै नहीं वहन कर सकती। महिषीको यदि ग्रहण करो, तो सेविकाको भी पाओगे, नहीं-तो केवल दासी! सो मै नही हूं।

[प्रस्थान

मंत्रीका प्रवेश

विक्रम—युधाजितके विरुद्ध रानीसे किसने अभियोग किया था, तुमने?

मंत्री—मंत्रणागृहके बाहर मै मंत्रणा नही करता, महाराज!

विक्रम—तो ये सब बातें किसने उनके कान तक पहुंचाई?

मंत्री—जिन्होंने कष्ट पाया है स्वयं उन्हींने।

विक्रम—रानीसे उनकी भेंट कैसे हुई?

मंत्री—करुणाके योग्य जो है, करुणामयी स्वयं उनका सन्धान रखती हैं।

विक्रम—मुझे अतिक्रम करके जो लोग रानीके पास प्रार्थना लेकर पहुंचते हैं वे दण्डके योग्य हैं, इस बातको याद रखना!

मंत्री—दण्ड उनलोगोंको मिल चुका है। जिनके विरुद्ध अभियोग है उनलोगोंने प्रार्थियोंके पके खेत जलाकर खाक कर दिये हैं, इस बातको सभी जानते हैं।

विक्रम—मंत्री, नाना कौशलसे तुम इन अमात्योंकी निन्दा करनेका मौका ढूंढा करते हो, इस बातपर मैने लक्ष्य किया है।

मंत्री—निन्दनीयोंकी मै निन्दा किया करता हू, किन्तु कौशलसे नहीं।

विक्रम—ये विदेशी लोग मेरे आश्रित हैं, तुमलोगोंकी ईर्षासे उनकी खास तौरसे रक्षा करना मेरा राज-कर्तव्य है।

मंत्री—उनलोगोंके विषयमें अब मै नीरव रहूंगा। किन्तु इस समय एक गम्भीर मंत्रणाका विषय उपस्थित है, महाराज! क्षण-भरके लिए—

विक्रम—अभी समय नहीं है। जाओ, विपाशाको संवाद दो कि आज वकुल-वीथिकामें मध्यरात्रिमें उसका नृत्य होगा। त्रिवेदीसे कह देना कि मीनकेतुकी पूजामें मंत्रोच्चारणमें उनका कोई स्खलन नहीं सहा जायगा।

मंत्री—काश्मीरके सभी अमात्य उत्सवमें आयेंगे, कहला भेजा है।

विक्रम—महारानीके साथ उनका साक्षात् हरगिज न होने पाये, सावधान रहना। [दोनोंका प्रस्थान

राजभ्राता नरेश और सुमित्राकी सहचरी विपाशाका प्रवेश

विपाशा—मै हरगिज नहीं मानूंगी इस बातको। काश्मीर जीता है तुमलोगोंने! मै नहीं मानती।

नरेश—सुन्दरी, अरसिक इतिहास मधुर कंठकी सम्मतिकी परवाह नहीं करता।

विपाशा—राजकुमार, दाम्भिक कण्ठकी उछल-कूदकी भाषा भी उसकी भाषा नहीं।

नरेश—किन्तु तलवारकी गवाही तो माननी ही पड़ेगी। यमराजको सामने रखकर वह बात करती है। हमारे महाराजने काश्मीर जीता है।

विपाशा—नहीं जीता। हमारे युवराज थे अनुपस्थित; मानससरोवरसे अभिषेकका जल लाने गये थे वे। इसलिए युद्ध नहीं हुआ, डाका डाला गया था।

नरेश—उनके काका चन्द्रसेन थे प्रतिनिधि। उन्होंने युद्ध किया था।

विपाशा—युद्ध नहीं किया, युद्धका बहाना किया था, लूटा-हुआ सिंहासन हार-माननेके छद्म-मूल्यमें स्वयं खरीद लेनेके लिए। तुम्हारे सभाकविने इस

विषयमें सात सर्गोंका काव्य लिख डाला है। तुम्हारा युद्ध धोखा है, तुम्हारा इतिहास धोखा है। भीतर-ही-भीतर मुसकरा रहे हो! तुम्हें शरम नहीं आती!

नरेश—महारानी सुमित्रा तो धोखा नहीं हैं। वे तो पर्वतसे उतर आई है हमारी विजयलक्ष्मीकी अनुवर्तिनी होकर।

विपाशा—चुप रहो, चुप रहो तुम। दुःखकी बात याद न दिलाओ। राजकुमारी तब बालिका थी सोलह वर्षकी। काका महाराजने आकर कहा, 'विजयीके आगे आत्म-समर्पण करना होगा, नहीं तो सन्धि नहीं हो सकती।' राजकुमारी जब आगमें कूदनेकी तैयारी करने लगीं तो पुरवृद्धोंने आकर कहा, 'बेटी, रक्षा करो, जो हाथ हमें मार रहे हैं उनपर तुम अधिकार कर लो, हमारी रक्षा करो। शान्ति हो।'

नरेश—किन्तु उस दिनकी कोई ग्लानि तो महारानीके मनमें नही है! प्रसन्न महिमासे सिंहासनपर उन्होंने अपना स्थान ले लिया है।

विपाशा—महादुःखको भूलने योग्य ही महाशक्ति है उनमें, वे सतीलक्ष्मी जो ठहरीं। जो अग्नि उनके जल-मरनेकी अग्नि थी, उसीको साक्षी रखकर उन्होंने विवाह किया था। तीन दिन कैलासनाथके मन्दिरमें ध्यानमें बैठकर उपवास करके उन्होंने अपनेको शुद्ध कर लिया था। असह्य अपमानको अपने भीतर जड़से भस्म करके तब आई हैं वे तुम्हारे घर। वीराङ्गनाके क्षमा यदि न होती तो आग लग जाती तुम्हारे सिंहासनमें!

नरेश—जानती हो विपाशा, उस वीराङ्गनाने अपनी महिमाकी छटासे काश्मीरकी ओर हमारे हृदयका एक दीप्यमान छायापथ अंकित कर दिया है। जालन्धरके युवकोंके मनको उन्होंने घुमा दिया है काश्मीरकी ओर। तुम नहीं जानतीं कि जालन्धरसे कितने पागल चले गये है काश्मीर, अपने जीवनकी ज्योति ढूंढने।

विपाशा—हाय रे भाग्य! यह युद्ध नहीं है। वहाँ तुम्हारे अस्त्रोंके लिए चलनेका रास्ता हो भी सकता है, किन्तु हृदय-जयका मार्ग तो उधरका तुमलोगोंने बन्द ही कर दिया है अपनी बर्बरतासे।

नरेश—साधना करनी होगी, – उसमें भी तो आनन्द है।

विपाशा—सो करते रहो, किन्तु सिद्धिकी आशा छोड़ दो।

नरेश—सिद्धि होगी ही, मै अकेला ही उसका प्रमाण दे दूँगा, काश्मीर तक बिना गये ही।

विपाशा—तुम्हारा अहंकार जितना बड़ा है उतनी ही बड़ी दुराशा है।

नरेश—दुराशा तो है ही मेरी, वही मेरा अहंकार है। मेरी अकांक्षा पर्वतकी दुर्गम शिखर है। वहाँ मै प्रभातके दुर्लभ ताराको देखता हूँ, भोरके स्वप्नमें।

विपाशा—अपने कविके पाससे पाठ याद करके आ रहे हो शायद ?

नरेश—उसकी मुझे जरूरत नहीं पड़ती। बाहरसे जिससे पाता हूँ कठोर बातें, भीतर वही देती रहती है वाणीका वर, चुपके-चुपके। यदि अभय दो तो उसका नाम भी बता सकता हूँ तुम्हें।

विपाशा—जरूरत नहीं इतनी हिम्मत दिखानेकी।

नरेश—तो रहने दो। पर, यह तो कमलकी कली है, इसे लेनेमें दोष क्या है ? यह भी तो मुँह खोलकर कुछ नहीं कहती।

विपाशा—नहीं, नहीं लूंगी।

नरेश—काश्मीरके सरोवरसे मै इसकी जड़ लाया था। बहुत दिनकी बहुत दुविधाके बाद दिखाई दी है यह कली। मालूम होता है मेरे सौभाग्यने अपना पहला निदर्शनपत्र भेजा है, – इसमें किसीके अदृश्य हस्ताक्षर हैं। नहीं लोगी ? यह लो, मै इसे रखे जाता हूँ तुम्हारे पैरोंके पास।

[जाना चाहता है

विपाशा—सुनो, सुनो, मै फिर कहती हूँ तुमसे, तुमलोगोंने काश्मीर नहीं जीता।

नरेश—जरूर जीता है। इसके लिए नाराज हो सकती हो, पर अवज्ञा नहीं कर सकतीं। हमलोगोंने काश्मीर जीता है।

विपाशा—छलसे।

नरेश—नहीं, युद्धसे।

विपाशा—उसे युद्ध नहीं कहते।

नरेश—हाँ, युद्ध ही कहते हैं।

विपाशा—वह विजय नहीं है।

नरेश—वह विजय ही है।

विपाशा—तो वापस ले जाओ अपनी कमलकी कली।

नरेश—वापस मै हरगिज नहीं ले जा सकता।

विपाशा—इसे मै नोंच-नोंचकर नष्ट कर दूँगी।

नरेश—कर सको तो कर देना,- किन्तु मैने दी है और तुमने ली है, यह बात हमेशाके लिए विधाताके मनमें बनी रहेगी, इसे कोई नहीं मिटा सकता। [प्रस्थान

सुमित्राका प्रवेश

सुमित्रा—कमलकी कली हाथमें लिये अकेली खडी-खडी क्या सोच रही है, विपाशा ?

विपाशा—मन-ही-मन फूलके साथ कर रही हूँ लड़ाई !

सुमित्रा—संसारमें तेरी लड़ाई कभी बन्द ही नहीं होना चाहती। कैसी लड़ाई ? भला फूलके साथ किस बातकी लड़ाई ?

विपाशा—इससे मै पूछ रही हूँ, 'तुम काश्मीरके फूल हो, यहाँ भी तुम्हारा चेहरा प्रसन्न क्यों ? अपमानको इतनी जल्दी कैसे भूल गये ?'

सुमित्रा—देवताके फूल मनुष्यके अपराधोंको यदि याद रखते तो मरुभूमि हो जाती यह पृथिवी।

विपाशा—तुम ही उस देवताका फूल हो, महारानी, किन्तु काँटे भी तो देवताओंकी ही सृष्टि है। सच-सच बताना, काश्मीरपर जो अत्याचार हुआ है उसकी याद क्या तुम्हें नहीं सताती ? चुप क्यों हो गई ? जवाब नही दोगी ? तुम्हें मातृभूमिकी दुहाई है, मेरे प्रश्नका उत्तर दो।

सुमित्रा—तुझे भी मातृभूमिकी दुहाई है, विपाशा, तू मुझे सिर्फ एक ही बात याद रखने दे कि मै जालन्धरकी रानी हूँ।

विपाशा—और जो-कुछ भूल सको सो भूल जाना, पर मैं तुम्हें यह हरगिज न भूलने दूंगी कि तुम काश्मीरकी कन्या हो।

सुमित्रा—यह मैं नही भूली। इसीसे काश्मीरके गौरवकी रक्षाके लिए ही मुझे कर्तव्यका गौरव रखना होगा। नहीं-तो यहाँ क्या अपने देह-मनमे दासीका कलंक पोतूंगी ?

विपाशा—इस बातको प्रतिदिन समझ रही हूं, महारानी। काश्मीरको तुमने जीता है इनके हृदयमें। मै तो यहाँकी कोई भी नहीं, फिर भी तुम्हारी महिमाके प्रकाशमें ही ये लोग मुझे जिन आँखोंसे देख रहे है, काश्मीरके किसीकी आँखोंमें तो वह मोह नहीं लगा।

सुमित्रा—विनय दिखा रही है ?

विपाशा—विनय नहीं, महारानी। मै अपनेमें आप ही आश्चर्य-चकित हूं। हँसो मत तुम, ये लोग मेरे लिए आजकल जैसी बातें कहा करते हैं वैसी बातें काश्मीरकी भाषामें हो, ऐसा तो मै नही समझती।

सुमित्रा—जीवनके जिस प्रभातमें तुझे यहाँ आना पड़ा है, तब तेरे कानोंमें काश्मीरकी पूरी भाषा जागनेका समय नहीं हुआ था। फिर भी, कलध्वनि थोड़ी-बहुत शुरू हो गई थी, इस बातको आज क्या भूल गई ? खैर जाने दे, अभी तक उत्सवका ठाठ शुरू नहीं किया, बात क्या है ?

विपाशा—ठाठ शुरू किया था, इतनेमें किसीने आकर कहा, इन लोगोंने काश्मीर जीता है। सुनते ही वेगीसे मैंने माला खोलकर फेंक दी, मेरा रक्ताम्बर पड़ा हुआ है शिरीषवनके पथपर। तुम हँस क्यों रही हो, रानी ?

सुमित्रा—उस जगहको तू वनका पथ कह रही है ! यहाँ आते समय तेरा रक्ताम्बर तो मैने किसीके माथेपर देखा है।

विपाशा—देख लो, रानी, जरा भी शरम नहीं, यहाँके युवकोंकी आदत ही खराब है,- यह तो चोरी है।

सुमित्रा—मुझे तो सन्देह हो रहा है, चोरीकी विद्या सिखानेके लिए ही तेरा रक्ताम्बर पड़ा रहता है चोरोंके रास्तेपर। सुना है उसकी विद्या पूरी हो चुकी है, अब उसकी चोरीकी अन्तिम परीक्षा होगी, तेरे ही मामलेमें।

विपाशा—राजाकी आज्ञा है क्या ?

सुमित्रा—जिनकी आज्ञा है उनकी वेदी सजा जाकर। यह कमलकी कली ही तेरा पहला अर्घ्य हो।

विपाशा—जाओ मत तुम, एक बात पूछती हूं मै तुमसे, सच-सच बताना। मीनकेतुकी पूजामें आज रातको जो उत्सव होगा उसमें तुम्हारा उत्साह है क्या ?

सुमित्रा—महाराजका आदेश है।

विपाशा—सो तो मालूम है, पर तुम्हारा अपना मन क्या कहता है ? चुप बनी रहोगी ?

सुमित्रा—प्रश्न क्या है तेरा ?

विपाशा—सचमुच ही क्या तुम महाराजको प्यार करती हो ? तुम्हें बताना ही पड़ेगा मुझे।

सुमित्रा—हाँ, मै प्यार करती हूं। जवाब सुनकर चुप क्यों रह गई ?

विपाशा—तो सच बात कह दूं तुमसे। और-कुछ दिन पहले यह प्रश्न उठता ही नहीं मेरे मनमें, और जवाब सुनकर मान भी लेती।

सुमित्रा—आज अपने मनके साथ मन-ही-मन मिलान कर रही होगी ?

विपाशा—सो तुमसे छिपाऊंगी नहीं, तुम तो जानती हो सब कुछ,—मिलान तो कर ही रही हूं, पर मेल ठीक बिठा नहीं पाती।

सुमित्रा—बैठेगा कैसे ! प्रजा-रक्षाकी दयामें पड़के काश्मीरका असम्मान स्वीकार करके जिस दिन मै महाराजके आगे आत्मसमर्पण करनेको राजी हुई थी, तब, तीन दिन तक कैलासनाथके मन्दिरमें मैने तपस्या किस लिए की थी ?

विपाशा—मै होती तो जालन्धरके पतनके लिए तपस्या करती।

सुमित्रा—तब मैंने यही शक्ति चाही थी कि रुद्रके प्रसादसे मेरा विवाह भोगका न हो। जालन्धरके राजप्रासादमें मै कभी भी किसी बातके लिए लोभ न करूं। तभी अपमान मुझे स्पर्श न कर सकेगा।

विपाशा—किसी दिन तुम्हारा मन विचलित नहीं हुआ, महारानी ?

सुमित्रा—प्रतिदिन हुआ है, हजार बार हुआ है।

विपाशा—मुझे माफ करना, महारानी, मुझे सन्देह होता है, तुम उनकी अवज्ञा करती हो।

सुमित्रा—अवज्ञा! ऐसी बात न कह, विपाशा। उनके अन्दर तुच्छ कुछ भी नहीं है। प्रचण्ड शक्ति है उनमें, उस शक्तिमें विलासकी गन्दगी नहीं, है उल्लासकी उन्मत्तता। मैं अगर उस तटभ्रष्ट प्रचण्ड स्रोतके आगे जा खड़ी होती तो सब-कुछ न-जाने कहाँ बह जाता, धर्म-कर्म शिक्षा-दीक्षा सब-कुछ। उस शक्तिकी दुर्जयताको रात-दिन रोकते-रोकते ही मेरा मन ऐसा पत्थर बन गया है। इतना असीम दान किसी भी नारीको नहीं मिलता,–इस दुर्लभ सौभाग्यको वापस करनेके लिए ही अपने साथ मेरा इतना जबरदस्त द्वन्द्व चल रहा है। महाराजकी अगर मैं अवज्ञा कर सकती तो सब-कुछ मेरे लिए सहज हो जाता। भीतर और बाहर मेरा दुःख कितना दुःसह है सो वे ही जानते हैं जिनसे मैने व्रत लिया है।

विपाशा—व्रतकी रक्षा कर रही हो, यह तो समझ गई, महारानी, किन्तु प्रेम!

सुमित्रा—क्या कहती है, विपाशा! इस व्रतने ही तो मेरे प्रेमको जिला रखा है, नहीं तो धिक्कारके नीचे वह दब मरता। प्रेम अगर लज्जाका विषय हो तो उससे बढकर उसका विनाश और क्या हो सकता है! मेरे प्रेमको बचाया है तपस्वी मृत्युंजयने। विवाहकी होमाग्निमेंसे मैने उस प्रेमको ग्रहण किया है,–आहुतियोंका कोई अन्त ही नहीं।

विपाशा—निष्ठुर हैं तुम्हारे देवता, मै उन्हें नहीं मान सकती।

सुमित्रा—कैसे जाना तैने कि निष्ठुर हैं वे? उनके पुकारते ही तुझे भी मानना पड़ता। किन्तु विपाशा, व्रतकी बात प्रकट करना अपराध है, आज मैने अन्याय किया है। अपने व्रतपतिसे क्षमा चाहती हूं मे, वे मुझे क्षमा करें।

विपाशा—मुझे क्षमा करो, महारानी।–पर, जा कहाँ रही हो?

सुमित्रा—देवदत्त पण्डितसे सुना है कि उत्सवमें शामिल होनेके लिए

प्रजा आई है बहुत दूर-दूरसे। आज मन्दिरके उपवनमें उन्हे राजाके दर्शन मिलेंगे। राजाको खबर लगते ही उन्होंने द्वार बन्द करनेका आदेश दे दिया है।

विपाशा—तुम क्या उस द्वारको खुलवा सकोगी ?

सुमित्रा—शायाद न खुलवा सकूं। फिर भी देखने जाऊंगी, शायद उसमें कही कोई सॅंध हो।

विपासा—द्वार बन्द करनेकी विद्यामें ये लोग इतने निपुण हैं कि उसमे तुम्हें कोई त्रुटि ही नही मिल सकती, मै कहे देती हूं। [दोनोंका प्रस्थान

देवदत्तका प्रवेश : रत्नेश्वरका तेजीसे प्रवेश

रत्नेश्वर—महाराज, ओ पण्डितजी महाराज !

देवदत्त—मुझे पुकार-पुकारकर मुझे भी आफतमें फॅसाओगे मालूम होता है। आखिर क्यों, क्या बात है ?

रत्नेश्वर—राजाका मै अपराधी हूं। उनके प्रहरीको मार-पीटकर मै यहाॅं आया हूॅं।

देवदत्त—मार-पीट की है ! सुनके शरीर मेरा पुलकित हो उठा है। ऐसे उग्र मजाककी इच्छा अचानक कैसे पैदा हो गई ?

रत्नेश्वर—उत्सवमें राजाके दर्शन मिलेंगे, इसी आशासे बड़ा कष्ट उठाकर राजधानीमें आया था। द्वारपालने कहा, उत्सवका द्वार बन्द है। इसीसे उसे मारना पड़ा। फरियाद करने राजा तक न पहुॅंच सका तो कम-से-कम अपराधीके रूपमें तो राजाके सामने पहुंच ही सकूंगा।

देवदत्त—कहाॅंके मूर्ख हो तुम ! तुम क्या समझते हो कि बुधकोटके एक गॅंवारके हाथ राजाके प्रहरीने मार खाई है – इस बातको मरते दम तक वह मंजूर करेगा ? उसकी स्त्री सुनेगी तो उसे वह घरमें भी नहीं घुसने देगी।

रत्नेश्वर—मै बहुत दूरसे आया हूं, महाराज !

देवदत्त—अब भी बहुत दूर ही हो। राजाके दर्शन क्या आसान बात है ! कोसोंकी गिनतीको ही तुम दूरी समझते हो, यह गलती है तुम्हारी।

रत्नेश्वर—गाँवका आदमी ठहरा मै, राज-दर्शनकी राजनीति मैं नहीं समझता, इसलिए महाराज मुझपर दया करेंगे।

देवदत्त—अपनी वुद्धिमे वाहुवलसे राज-दर्शनकी जो रीति तुमने निकाली है, राजधानी या राजसभामें उसका प्रचलन नहीं है, समझे! पारिषदोंके लिए दर्शनी भी कुछ लाये हो?

रत्नेश्वर—और कुछ नहीं लाया अपनी फरियादके सिवा, और कुछ है भी नहीं मेरे पास।

देवदत्त—गाँवके आदमी हो, इतना तो समझ गया।

रत्नेश्वर—कैसे समझ गये, महाराज?

देवदत्त—हुं, अभी तक इतनी शिक्षा भी तुम्हें नहीं मिली कि राजा तुमलोगोंके मुंहसे सिर्फ इतना ही सुनना चाहते हैं कि उनके राज्यमें सव काम अच्छा चल रहा है, सतयुग है, रामराज्य है।

रत्नेश्वर—सव अगर अच्छा न चल रहा हो तो?

देवदत्त—तो उसे न छिपाओगे तो और भी वुरा चलेगा। राजाको अप्रिय वात सुनाना राजद्रोह है!

रत्नेश्वर—हमपर अगर अत्याचार हो?

देवदत्त—हो तो वह तुम्हीं लोगोंपर होगा। राजाको जताओगे तो वह होगा राजापर अत्याचार।

रत्नेश्वर—महाराज, मुझे सन्देह हो रहा है, आप हँसी तो नहीं कर रहे?

देवदत्त—हँसी करता है भाग्य। वर्तमान अवस्था तुम्हें समझाये देता हू। आज फाल्गुणकी शुक्ला-चतुर्दशी है। आज यहाँ चन्द्रोदयके मुहूर्तमें केशर-कुंजमें भगवान मीनकेतुकी पूजा होगी, राजाका आदेश है। नाच-गानकी वडी-भारी धूम होगी, – उसके साथ तुम्हारे सुरका मेल नहीं वैठेगा।

रत्नेश्वर—न वैठे, पर, राजाके चरण-दर्शनका तो मेल वैठ ही जायगा।

देवदत्त—राजाको राज-सभामें पाना ही ठीक पाना है, और-जगह उनकी अराजकता रहती है। आज-भर ठहर जाओ, कल मै खुद तुम्हें अपने साथ राजसभामें ले जाऊंगा।

रत्नेश्वर—महाराज, आपलोगोंको सब्र है , पर मेरा तो सारा तन-मन जला जा रहा है, एक-एक घडी असह्य मालूम हो रही है। हमारे लिए सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह है कि जब हम यमराजकी मार खाते हैं या अपमानकी शूलीपर चढाये जाते हैं तब भी हमें राजशासनका मुंह ताकते रहना पड़ता है, अपने हाथ पाँवसे हम इतने लाचार हैं। धिक्कार है विधाताको।

देवदत्त—अब जरा चुप रहो, – देखो, महारानी आ रही हैं। उनके सामने आर्तनाद करनेकी धृष्टता न करना।

रत्नेश्वर—मेरा सौभाग्य है, स्वयं आ रही हैं महारानी! रास्ते-भर मैं इन्हींके दर्शनकी कामना करता आया हू।

देवदत्त—जिन्हें दु:ख होता है उन्हींको दु ख देना चाहते हो तुमलोग। जानते नहीं, विचारका भ'र उनपर नहीं है, राज्यका शासन करते है राजा।

रत्नेश्वर—महारानी-मा!

सुमित्राका प्रवेश

सुमित्रा—तुम कौन हो?

देवदत्त—कोई नहीं, नाम है रत्नेश्वर, बुधकोटसे आया है,–इससे ज्यादा और कुछ परिचय नहीं इसका। चरणोंकी धूल लेकर चला जायगा। (रत्नेश्वरसे) हो गये न दर्शन, चल अब मेरे घर चल, पडितानीका प्रसाद पाना।

सुमित्रा—बुधकोट, वह तो शिलादित्यके शासनमें है। बताओ तो, वहाँका शासन कैसा है?

देवदत्त—महारानी, ये सब बातें यहाँकी कोकिल-ध्वनिमें अच्छी नहीं सुनाई देतीं। मैं इसे कल ही खुद राजसभामें ले जाऊंगा।

रत्नेश्वर—राजसभा! महारानीजी, वहाँ कोई आशा नहीं जानकर ही मै इस उत्सव-सभामें अपनी फरियाद लेकर आया हूं।

सुमित्रा—क्यों, आशा क्यों नही?

रत्नेश्वर—शिलादित्य स्वयं राजसभामें उपस्थित है, हमारा रोना दबा देनेके लिए। वे बैठते हैं राजाके कानोंके पास, और हम रहते हैं बहुत दूर।

सुमित्रा—कोई डर नहीं तुम्हें, कहो, क्या कहना चाहते हो, मुझसे कहो।

रत्नेश्वर—सतीतीर्थ भृगुकूट-पहाड़के तले है। हमारे ही राजकुलकी महारानी महेश्वरी वहाँ पतिकी अनुगामिनी हुई थीं, पाँच सौ वर्ष पहलेकी बात है यह।

सुमित्रा—उस सतीकी कहानी मैंने भाटके मुंहसे सुनी थी, अपने विवाहके दिन।

रत्नेश्वर—उन्हींकी सिन्दूरकी डिबिया वहाँ है समाधि-मन्दिरमें।

सुमित्रा—उस डिबियाका सिन्दूर मैंने भी लगाया है विवाहके समय।

रत्नेश्वर—हमारी स्त्रियाँ तीर्थ करने जाती हैं वहाँ, उस डिबियासे सिन्दूर लेकर लगाती हैं अपनी माँगोंमें। आज तक यही होता आया है, कोई बाधा नहीं थी।

सुमित्रा—अब क्या कोई बाधा उपस्थित हुई है?

रत्नेश्वर—हाँ, महारानी-मा।

सुमित्रा—कैसी बाधा?

रत्नेश्वर—शिलादित्यने उस तीर्थद्वारपर कर लगा दिया है। गरीब स्त्रियोंके लिए यह बड़ा-भारी संकट है। उनके हाथोंसे कंकण छीनकर कर वसूल किया जाता है।

सुमित्रा—क्या कहा! महाराजकी सम्मति है इसमें?

रत्नेश्वर—राजकार्यका रहस्य मैं नहीं जानता, मा, कुछ कहनेकी हिम्मत नही पड़ती।

सुमित्रा—पण्डितजी, बताओ, इसमें महाराजकी सम्मति है?

देवदत्त—सम्मतिकी जरूरत नहीं पड़ती, इसमें आय जो बढ़ती है!

सुमित्रा—सच-सच बताओ, इस धनको राजकोष ग्रहण करता है?

देवदत्त—उस दिन सभा-पण्डितने व्याख्या करके बताया था कि अग्नि जो कुछ ग्रहण करती है उसमें मलिनता नहीं रहती, और राजाका कर वही अग्नि है।

सुमित्रा—मै पाण्डित्यकी व्याख्या नहीं सुनना चाहती, – बताओ, ऐसा धन राजकोषमें आता है ?

देवदत्त—नियमकी रक्षाके लिए कुछ आता जरूर है, किन्तु अनियमका कवल उससे बहुत बडा है, – करका अधिकाश उसीमें समा जाता है। महारानी, बहुतसे पापियोंका उच्छिष्ट राज-कोषमें जमा होता है।

रत्नेश्वर—मा, इस जरा-सी बातपर तुम इतना दु ख न करो। हमारे अन्नकी पूँजी बहुत थोडी है, – उसका रोना रोते रोते हमारा कण्ठ थक गया है। उस पूँजीको जब कोई और भी घटा देता है तब उस विषयमें हम कोई शिकायत नहीं करते, उसकी फरियाद करना छोड़ दिया है हमलोगोंने। पर, हमारे भी मर्मस्थल हैं, वहाँ राजा और प्रजामें कोई भेद नहीं, वहाँ अगर राजा हाथ डालें तो वह हमसे नहीं सहा जायगा।

सुमित्रा—कहो, सब बातें कहो। डरो मत।

रत्नेश्वर—हमलोग बहुत ही डरपोक हैं, महारानी-मा, पर बहुत ज्यादा दु ख पड़नेपर हमारा भी डर जाता रहता है। इसीसे इस तरह यहाँ आ सका हूँ। जानता हूँ, सिरपर मौत मड़रा रही है, पर संकटसे जहाँ ग्लानि ज्यादा असह्य है वहाँ हम-जैसे कमजोर भी संकटकी परवाह नहीं करते। भूखों मरनेका दु ख कम नही है, लेकिन ऐसी भी अवस्था होती है जब जिन्दा रहनेका दु ख उससे भी बढ जाता है।

सुमित्रा—इस बातको मै भी समझती हूं। जो कुछ तुम्हें कहना है, मुझसे सब कह दो साफ-साफ।

रत्नेश्वर—तीर्थद्वारपर कर वसूल करनेके लिए राजाके अनुचर नियुक्त हैं, – सुन्दरी स्त्रियोंपर जुल्म हो रहा है वहाँ प्रतिदिन।

सुमित्रा—सत्यानास ! सच कह रहे हो ?

रत्नेश्वर—जिस बातपर आदमी अपने प्राण देनेको तैयार हो जाता है वही बात मै सिर्फ मुंहसे कहने आया हूं, महारानी, यही मेरे लिए लज्जाकी बात है। मेरी छोटी बहन गई थी तीर्थमें, अभागिन आज तक नहीं लौटी।

सुमित्रा—यह भी तुमने सह लिया ?

रत्नेश्वर—नहीं सहूँगा, यही प्रतिज्ञा करके निकल पड़ा हूँ घरसे। अपने हाथमें ही दण्ड उठाना पड़ेगा, किन्तु उसके पहले राजदण्डकी अन्तिम दुहाई दे जाना चाहता हूँ। उसके बाद धर्म ही जानें कि क्या होगा! पाप ही रहेगा या मै ही रहूँगा।

सुमित्रा—यह-सब क्या शिलादित्यकी जानकारीमें हो रहा है?

रत्नेश्वर—हाँ, उन्हींकी इच्छासे हो रहा है।

सुमित्रा—पण्डितजी, सच-सच बताओ, राजाके कान तक क्या यह बात आज तक नही पहुँची?

देवदत्त—तुमसे कभी झूठ नहीं बोलूंगा मै। रत्नेश्वर, तुम्हारी फरियाद हो चुकी, अब जाओ तुम,– वो मेरी कुटीर दिखाई दे रही है।

[रत्नेश्वरका प्रस्थान

सुमित्रा—बताओ अब, क्या राजा तक यह फरियाद नहीं पहुँची?

देवदत्त—पहुँची है। मन्त्री दुविधा कर रहे थे, मैने स्वयं जता दिया है उन्हें।

सुमित्रा—फल क्या हुआ?

देवदत्त—सुननेसे कोई लाभ नही। राजा जब कोई अन्याय करते हैं तब उसके समर्थनके लिए वे भीषण हो उठते है।

सुमित्रा—पण्डितजी, भीषणता अन्यायका छद्मवेश है, डरसे उसका कभी सम्मान न करूं, भगवानसे यही कामना है मेरी। अन्यायकारीको क्षुद्र ही समझना होगा, अति क्षुद्र, फिर चाहे उसके हाथमें कितना ही बड़ा दण्ड क्यों न हो। उससे अगर डरूं, तो उससे भी क्षुद्र होना पड़ेगा मुझे। शिलादित्य उत्सवके निमन्त्रणमें आया है राजधानीमें?

देवदत्त—हाँ, आया है।

सुमित्रा—मन्त्रीको आदेश दो कि मै उससे मिलना चाहती हूं।

देवदत्त—महारानी!

सुमित्रा—तुम जो-कुछ कहना चाहते हो, सो मै जानती हूं, सब-कुछ जानकर ही कह रही हूँ मैं, आज उससे मेरा साक्षात् होना ही चाहिए।

देवदत्त—पहले उत्सव समाप्त हो जाने दो।

सुमित्रा—इस पापका विचार बगैर हुए उत्सव आज हो ही नहीं सकता।

देवदत्त—महारानी, सावधान होनेकी बहुत ज्यादा जरूरत है।

सुमित्रा—मुझे तुम रोको मत, पण्डितजी! एक दिन मैं आगमें कूदने जा रही थी, विप्रोंके परामर्शसे रुक गई। तभी यदि अपना संकल्प पूरा कर डालती तो इतना अमङ्गल हरगिज न हो पाता इस जगतमें। शिलादित्यका विचार अगर न हुआ तो इस राज्यकी रानी होनेकी लज्जा मैं नहीं सहूँगी। द्वारके बाहर गर्जन कैसा सुनाई दे रहा है!

देवदत्त—दयामेयी, अभी तुमने सुना ही कितना है! सबका सब कानोंमें जाता तो कान बहरे हो जाते। जिन निःसहायोंके सामने सारेके सारे दरवाजे बन्द हैं उनके कण्ठ भी बन्द रहते हैं, इसीसे तो हैं हम आराममें। बाधा आज शायद ज़रा-कुछ हटी है, इसीसे उमड़ते हुए दुःख-समुद्रकी ध्वनि कुछ सुनाई दे रही है।

सुमित्रा—बाधा है तो होने दो, किन्तु उसके सामने खड़े होकर आर्तनाद क्यों कर रहे हैं ये कायर सब! विधाता जिनकी अवज्ञा करते हैं उनपर दया नहीं करते, इतना भी ये लोग नहीं जानते? दरवाजा तोड़ क्यों नही डालते! डरते-डरते न्याय चाहते हैं, इसीसे तो न्याय नहीं मिलता उन्हें। राजा जितने बड़े जोरसे उनसे कर वसूल करता है, उतने बड़े जोरसे ही उन्हें न्यायकी माँग करनी चाहिए, इसका उन्हें पूरा अधिकार है। धर्मका विधान आदमीका अनुग्रहका दान नही है। मुझे ले चलो तुम उनके बीच।

देवदत्त—महारानी, तुम अपनी जगह रहकर ही उन्हें बचा सकोगी। जहाँ तुम्हारा आसन है तुम्हारी शक्ति भी वहीं है।

सुमित्रा—मेरा आसन! मेरा आसन मुझे नहीं मिला। अहोरात्र यह शून्यता मुझसे नहीं सही जाती। बार-बार मेरा मन यही कह रहा है कि रुद्रभैरवके चरणोंके पास ही मेरा स्थान है। दिखा दें वे मार्ग, तोड़ दें वे समस्त बाधा-विघ्नोंको, व्यर्थताके अपमानसे सेविकाकी वे रक्षा करें।

[दोनोंका प्रस्थान

नरेश और विपाशाका प्रवेश

नरेश—सुनो सुनो, विपाशा, एक बात सुन जाओ।

विपाशा—सुनने योग्य बात होगी तभी सुनूंगी।

नरेश—मै तुमसे कहने आया हूं, जालन्धरने काश्मीर नहीं जीता।

विपाशा—कब तुम्हारी गलतफहमी दूर हुई ?

नरेश—प्रतिदिन ही दूर हो रही है। रोज ही प्रमाण मिल रहा है कि काश्मीरने ही जालन्धर जीता है। हार मान ली मैने। अब प्रसन्न होओ।

विपाशा—अभी उसका समय नहीं आया।

नरेश—कब आयेगा ?

विपाशा—जब फिर एक बार तुमलोग सेना लेकर काश्मीरसे लड़ने जाओगे।

नरेश—जायेंगे लड़ने, और कोशिश करके हार भी आयेंगे।

विपाशा—कोशिश करनेकी जरूरत नहीं होगी, वीर-पुरुष! उस युद्धको बगैर देखे मै न मरू, इतना ही काफी है। छलनाको गौरव समझकर जो अहंकार कर रहे हो, वह जब चूर्ण हो जायगा तभी यह बात मानूगी कि धर्म है।

नरेश—सच कह रहा हूं मै, उस गौरवके बोझको कहीं पटक पाऊं तो जी जाऊं मै।

विपाशा—क्यों, बताओ भी तो ?

नरेश—क्योंकि उस गौरवसे बहुत ज्यादा कीमती चीज देख ली है।

विपाशा—रानी सुमित्राको देखा है।

नरेश—उनके विषयमें कुछ कहना ही बाहुल्य है। मै कह रहा था—

विपाशा—और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं। उनसे बड़ी बात तुम्हारे राज्यमें और-कुछ है ही नही। तुम्हारे राजा क्या उन तक पहुंच पाते है ? चुप क्यों हो रहे ? शरम है मलूम होता है ? मंजूर कर लो तो हर्ज क्या है।

नरेश—मंजूर बहुत दिन पहले ही कर चुका हूं। बुरी घड़ीमें महाराज

कास्मीर जीतने गये थे। उसे जीतकर उन्होंने अपना राज्य खो दिया। काश्मीरसे पाप-ग्रहको स्वागत करके ले आये हैं अपने राज्यमें, पापके नैवेद्यसे उसीको पुष्ट किये जा रहे हैं। विपाशा, तुमसे मैं नहीं छिपाऊंगा, संकटका जाल चारों तरफसे घिरा आ रहा है, गाँठपर गाँठ लगती चली जा रही है, उसीके बीच निश्चिन्त होकर बैठे हुए हैं हमारे स्वेच्छान्ध महाराज। तैयार होना होगा हम ही लोगोंको, - अब समय नहीं है।

विपाशा—लिहाजा ?

नरेश—लिहाजा इसी समय तुम्हारे मुंहसे एक गीत सुन लेना चाहता हूं।

विपाशा—मेरा गीत, संकटकी भूमिकामें !

नरेश—बाँसुरीके सुरसे सर्पकी जड़ता दूर हो जाती है, तुम्हारे गीतसे मेरी तलवार जाग उठेगी।

विपाशा—युद्धका गीत चाहते हो ?

नरेश—नहीं, उसका गीत मेरी नसोंमें मौजूद है, मैं क्षत्रिय हूं।

विपाशा—तो ?

नरेश—तुम जानती हो, कौन-सा गीत मुझे प्यारा है।

विपाशा—उत्सवके समय तो गाना ही पड़ेगा – तभी सुन लेना।

नरेश—जो सबको मिलेगा उसमें मेरा सिर्फ एक ही हिस्सा होगा। एक सम्पूर्ण दान दो मुझे, जो केवल मेरा अकेलेका ही हो।

विपाशा—

गीत

बोल उठा मेरा मन, जानता हूं, जानता हूं,
है सुगन्ध किसकी यह,
खोल रही उरकी तह,
गाती वह नया गान,
मधु - ऋतुका मधुर दान,
आ गया वसन्त आज, मानता हूं, मानता हूं।

नरेश—विपाशा, मै तुमसे एक बात सुनना चाहता हूं।

विपाशा—तुम्हारा स्वभाव बड़ा लोभी है। अभी कह रहे थे कि एक गीत सुनना चाहता हूं, – गीत खतम भी न हो पाया कि बोल उठे, 'एक बात सुनना चाहता हूं!' एक बातसे दो बात होगी, और दोसे तीन, – फिर मेरे कामका समय निकल जायगा। मै चल दी।

नरेश—सुनो, सुनो, एक बातका जवाब देती जाओ। तुमने जो गाया सो क्या सच है ? 'मधुऋतुका मधुर दान' मिला है तुम्हें ?

विपाशा—अरसिक हो तुम, व्याख्या करके जिसे गीत समझाना पड़े, उसे गीत न सुनाना ही अच्छा है। तुमने तो अलंकार-शास्त्रके छात्रोंको भी मात कर दिया!

नरेश—तो रहने दो व्याख्या, गीत ही मेरे लिए काफी है।

[दोनोका प्रस्थान

मन-ही-मन श्लोक पढ़ते हुए राजपुराङ्गना कालिन्दीका प्रवेश, मजरी और गौरीका प्रवेश

गौरी—अकेली किससे बात कर रही हो ? वन-देवतासे ?

कालिन्दी—नहीं, मन-देवतासे। मन्मथका स्तोत्र कंठस्थ कर रही हूं। राजाका आदेश है।

गौरी—उसे हृदयस्थ रखना ही ठीक है, कंठस्थ करनेकी क्या जरूरत ?

कालिन्दी—हृदयके चलनेका मार्ग है कंठमें।

गौरी—इतने दिन हो गये, आज तक जालन्धरिनियोंका रंग-ढग कुछ समझ ही में नहीं आया।

कालिन्दी—इसमें आश्चर्यकी क्या बात है काश्मीरिनी! समझनेके लिए बुद्धिकी जरूरत है। कहाँ कठिन मालूम होता है, सुनूं भी तो ?

गौरी—वेदमें अग्नि सूर्य इन्द्र वरुण बहुत-से देवताओंकी स्तुति है, पर तुम्हारे इस देवताका तो नाम कहीं नहीं सुना।

कालिन्दी—सत्ययुगके ऋषि-मुनि जितना ही इनसे बचकर सावधानी

चलनेकी कोशिश करते थे उतने ही असावधान होकर वे संकटमें पड़ते थे। मुंहसे इनका नाम नहीं लेते थे, इसीसे मार खाया करते थे भीतर-ही-भीतर। मालूम होता है तुमने पुराण नहीं पढ़े ?

गौरी—मूर्ख हैं हम, यही अच्छा है, विदुषी ! सत्ययुगकी कलंक-कथा कलियुगमें घसीटती फिरें, इतनी विद्याकी जरूरत क्या है, बहन ! कलियुगका पाप-भार ही काफी भारी है।

कालिन्दी—लज्जित कर दिया तुमने तो। मूर्ख बननेका अहंकार मै नहीं कर सकती, – इसमें काश्मीरकी ही जीत रही।

मंजरी—बहन, अपने कालिन्दी-कलकल्लोलको जरा बन्द कर। त्रिवेदी महाराज कहते हैं, कालिन्दीकी रसनाने अपने पड़ोसी दाँतोंसे काटनेकी विद्या सीख ली है। सिर्फ उस विद्याका जोर दिखानेके लिए ही तो, जिस देवताको मानती नहीं उसके बारेमें बहस छेड़ती है। नये देवताकी भक्ति करनेके पहले अपने इष्टदेवताकी साधना तो कर ले।

कालिन्दी—उसके बाद आयेंगे अनिष्ट-देवता। जरा चुप रह, बहन, स्तुतिको फिरसे जरा दुहरा लूं। देवता तो क्षमा भी कर देते हैं, पर हमारे सभाकवि ऐसे हैं कि उनकी रचना पढनेमे किसीसे कोई गलती हो गई तो वे उसे बगैर रुलाये नहीं छोड़ते।

मंजरी—लो, वे आ रहे हैं त्रिवेदी महाराज। उनसे आज सन्देह मिटा लेना है।

श्लोक पढ़ते-हुए त्रिवेदीका प्रवेश

त्रिवेदी—कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान्यो जने जने
नमोऽस्त्ववार्यवीर्याय तस्मै मकरकेतवे।

मंजरी—मन-ही-मन क्या बड़बड़ा रहे हो, महाराज !

त्रिवेदी—गड़बड़ न करो, स्तोत्र कंठस्थ कर रहा हूं।

मंजरी—क्या कंठस्थ कर रहे हो ?

त्रिवेदी—मकरकेतुकी स्तुति। राजाका आदेश है।

कालिन्दी—तुम्हारी भी यही दशा है !

त्रिवेदी—देखतीं नहीं, मधुकरका गुंजन अब नहीं सुनाई देता कहीं। संस्कृत शौरसेनी मगधी अर्धमागधी महाराष्ट्री पारसिक यावनिक नाना भाषाओंका अभ्यास चल रहा है आजकल। इसीसे समझा जा सकता है कि मकरकेतुका समस्त देशोंकी सभी भाषाओंमें पाण्डित्य है।

कालिन्दी—किन्तु अनुच्चारित भाषा ही वे सबसे ज्यादा समझते हैं। पण्डितजी महाराज, एक बातका उत्तर तो दो, – मकरकेतुकी पूजाका विधान तुम्हें किस वेदसे मिला है ?

त्रिवेदी—चुप, चुप। क्या कण्ठस्वर मिला है तुम पुराङ्गनाओंको !

कालिन्दी—कैसे अरसिक हो तुम, उमर हुई है तो क्या विचार-बुद्धि भी जाती रही ! तुम्हारे कवि तो कोकिलसे तुलना करते हैं हमारे कंठकी।

त्रिवेदी—अन्याय नहीं करते वे। कोई बात गुप्त रखनेकी आदत ही नहीं उस पक्षीमें।

कालिन्दी—पण्डितजी महाराज, तुमसे गुप्त बात कहने लायक मनका भाव अभी नहीं हुआ मेरे। शास्त्रका विधान जानना चाहती हूं मैं। ये कह रही थीं अभी कि पुराणमें अतनुका तनु नहीं है, और न वेदमें उसका कहीं पता है, – बाकी और बचा क्या ? तो फिर पूजा किसकी होगी ?

त्रिवेदी—अरी चुप भी रहो। सुरको और-एक सप्तक उतारकर बात करो।

कालिन्दी—क्यों, महाराज, डर किसका है ?

त्रिवेदी—जो नये देवताकी पूजा चलाना चाहते हैं वे भक्तिके जोरकी अपेक्षा देहके जोरको जरा ज्यादा काममें लाते हैं। मैं भला-मानस ठहरा, देवतासे बढ़कर इन देवताभक्तोंका मुझे ज्यादा डर लगता है।

गौरी—महाराज, मैं कहती हूं, कभी-न सुने अचानक-देवताकी पूजा कैसी ?

त्रिवेदी—मूढ़ है तू, जो पुराने देवता हैं उनमें उग्रता नहीं है। संसारमें अचानक-देवता ही भयानक हैं। उनकी पूजा करनेमें व्यर्थता है, और न पूजा करनेमें है सर्वनाश। इसलिए बहस छोड़ो, – मंजरी पहनो, वीणा उठाओ, और माला गूथो, – पंचशरके शरोंमें सान चढ़ाओ।

कालिन्दी—लेकिन यह तो बताओ, महाराज, मन्त्र कहाँसे मिला तुम्हें ?

त्रिवेदी—जो पूजाका प्रचार कर रहे हैं, पूजाके मन्त्र उन्हींने रचे है। मै उन्हें श्रुतिसे ग्रहण करके स्मृतिसे व्यक्त करूँगा। देख लेना, राजसभाके श्रुतिभूषण कहेंगे, 'साधु!' स्मृतिरत्नाकर कहेंगे, 'अहो किमाश्चर्यम्!' समझी!

मंजरी—अरे, यह क्या बहन! बाहर अस्त्रोंकी झनकार कैसी ?

कालिन्दी—हो सकता है कि सचमुचके अस्त्र न हों। शायद उत्सवके किसी खेलका अभ्यास किया जा रहा है।

गौरी—त्रिवेदी महाराज, यह भी शायद तुम्हारे जालन्धरकी अद्भुत सृष्टि है! मीनकेतुके उत्सवमें रक्तपातका खेल ?

त्रिवेदी—सुन्दरी, जगतमें इस खेलका बार-बार अभिनय हो चुका है। त्रेतायुगमें इस खेलमें एक बार राक्षस और वानरोंने मिलकर अग्निकाण्ड कर डाला था। कलियुगमें उनका वंश बढ़ा ही है, घटा नहीं। कुछ भी हो, शब्द मुझे अच्छा नहीं मालूम होता, – जाओ तुमलोग, मन्दिरमें जाकर आश्रय लो। [सबका प्रस्थान

—

२

सुमित्रा और प्रतिहारी

सुमित्रा—उस प्रजाको उपस्थित करो, उसकी जरूरत है मुझे। रत्नेश्वर नाम है उसका।

प्रतिहारी—वह तो कही मिल नहीं रहा है, महारानी।

सुमित्रा—अभी कुछ देर पहले तो था यहाँ।

प्रतिहारी—बहुत तलाश किया, कोई पता नही लगा।

सुमित्रा—देवदत्त पण्डितके घर नहीं है ?

प्रतिहारी—पंडितानीजीने कहा कि यहाँ कोई नही आया। लीजिये, पण्डितजी खुद ही आ रहे हैं इधर। [प्रस्थान

देवदत्तका प्रवेश

सुमित्रा—रत्नेश्वर कहाँ है ?

देवदत्त—उसीको तो ढूँढ़ने आया हूँ।

सुमित्रा—उसकी तो बहुत जरूरत है। मिलना ही चाहिए।

देवदत्त—इसीलिए तो उसका मिलना अत्यन्त कठिन होगा। अभागेसे कहा था कि जा, मेरे घर चला जा।

सुमित्रा—तो क्या तुम्हें सन्देह हो रहा है—

देवदत्त—सन्देह हो रहा है, पर मैं नाम नहीं ले रहा।

सुमित्रा—क्या यह भी सहना पड़ेगा ?

देवदत्त—सहना तो पड़ेगा ही। प्रमाणका अभाव है जो।

सुमित्रा—इससे क्या पापीको छोड़ दोगे ?

देवदत्त—निष्कृतिका सदुपाय पापी खुद ही जानता है, हमें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा।

सुमित्रा—तो क्या कुछ भी नहीं करोगे ?

देवदत्त—यदि सम्भव होता तो अपनी अस्थियोंको वज्र बनाकर उसके सिरपर टूट पड़ता।

सुमित्रा—तुम कहना चाहते हो कि कुछ भी करनेकी जरूरत नहीं ? चुप क्यों हो रहे पण्डितजी, लज्जासे ? कहीं कुछ करना न पड़े इस डरसे ? मैं तो धैर्य नहीं रख सकती। विपाशा, तू यहाँ क्या कर रही है ?

विपाशाका प्रवेश

विपाशा—महारानीके लिए अनगदेवकी पूजाका अर्घ्य बना कर लाई हू।

सुमित्रा—फेंक दे, फेंक दे, फेंक दे सब। आज मैं रुद्रभैरवके मन्दिरमें जाऊँगी, पण्डितजी, पूजाकी तैयारी करो।

देवदत्त—पुरोहित त्रिवेदीको आज महाराजाने अपने काममें नियुक्त कर रखा है।

सुमित्रा—तुम होगे मेरे पुरोहित।

देवदत्त—मै और पुरोहित !

सुमित्रा—हाँ, तुम । चुप क्यों हो, डर गये क्या ?

देवदत्त—डर देवताका है । मुझसे मन्त्र पढ सकता हूँ, किन्तु अन्तरकी बात अन्तर्यामी ही जानते हैं । परन्तु, महारानी, भैरवकी पूजा तुम क्यों करना चाहती हो ?

सुमित्रा—मन दुर्बल है, शक्ति चाहती हूं ।

विपाशा—शक्तिकी जिन्हें जरूरत है उनमे तो तुम नहीं हो । उनमे है महाराज , महाराजको शक्ति चाहिए । ऐसा असाधारण रूप लेकर आई हो तुम यहाँ कि उसके आगे राजलक्ष्मीको भी हार माननी पड़ी । इसके लिए किसे दोप दिया जाय ! अगर क्षमा करो तो कहूँ,– दोप तुम्हारा ही है ।

सुमित्रा—जरा खुलासा करके बता ।

विपाशा—राजाने जो काश्मीरके उन नराधमोंको बिठा रखा है राज्यकी छातीपर, उसका कारण सुनोगी ? नाराज तो न होगी ?

सुमित्रा—कारण तो मै सुनना ही चाहती हू ।

विपाशा—प्रेमके गौरवको खूब बड़ा करके जताना चाहा था राजाने । महामूल्य दान दु साहसके साथ दे सकते तो जी जाते वे । इस जरा-सी बातको तुम नहीं समझ सकीं ?

सुमित्रा—मैंने तो कोई बाधा नहीं दी ।

विपाशा—दी नहीं बाधा ? अपने इस भुवनमोहन रूपको लेकर तुम कहाँ सुदूर जाकर खड़ी रहीं ? कुछ माँगा नहीं, कुछ लिया नहीं, यह कैसी निष्ठुर निरासक्ति है तुम्हारी ! तुम राजलक्ष्मी जैसी हो, राजाके तरंगित कामना-सागरके पानीमें तुम्हारे पैर भीगना भी नहीं चाहते, राजवैभवका जाल तुम्हें जरा भी न बाँध सका । तुम जितना ही मुक्त रहीं, राजा उतने ही बन्दी होते चले गये । अन्तमें एक दिन अपने राज्यको राजपाट सहित सौंप दिया उन काश्मीरी नन्दनियोंके हाथ ; और समझ लिया कि तुम्हींको दान दिया है !

सुमित्रा—मुझे इसकी कुछ भी खबर नहीं ।

विपाशा—मैं जानती हूं। राजाने सोचा था कि अपने दाक्षिण्यकी उन्मत्ततासे वे तुम्हें चकित कर देंगे। तब तक तुम्हें उन्होंने पहचाना नहीं था। किन्तु, सोचो तो जरा, कितना बड़ा दुर्भाग्यवान राज-सिंहासनपर बैठा फड़फड़ा रहा है! देना चाहता है, पर दे नहीं सकता, लेना चाहता है, पर लेनेकी योग्यता नही। व्यर्थ निर्बुद्धिताके धिक्कारसे आज वे सभीपर क्रुद्ध हो उठे है। उनमें तुम भी हो।

सुमित्रा—पण्डितजी, आज तक मैं समझ नहीं पाई कि मेरा अपराध कहाँ है!

देवदत्त—महारानी, कलिको हम कब कहाँसे हिलाकर जगा देते हैं, जान ही नहीं पाते।

विपाशा—पंडितजी महाराज, जान गये हो तुम, कहना नही चाहते। पर, मै कहूंगी। मै नही डरती किसीसे। महारानीके साथ महाराजाका सम्बन्ध अन्यायसे शुरू हुआ है, उस पापके छेदमेंसे ही कलिने प्रवेश किया है।

सुमित्रा—चुप, विपाशा, चुप रह तू।

विपाशा—क्यों चुप रहूं मै? क्या 'काश्मीर जीतकर इनलोगोंने तुमपर अधिकार कर लिया है' इस झूठी बातको गाती फिरूं मै? दंग रह जाती हूं मै तुम्हारा धैर्य देखकर, महारानी! पापको जीता है तुमने पुण्यसे। किन्तु उस पुण्यका दान क्या महाराज ग्रहण कर सके?

सुमित्रा—चुप रह, चुप रह, विपाशा!

विपाशा—मेरा मुंह न बन्द कराओ, महारानी। जिस बातको अपने अन्तःकरणमें जानती हो उस बातको बाहरसे भी सुनना अच्छा है। लो, राजा आ रहे है। मै जाती हू, मै नही रह सकती,—न-जाने क्या कहते क्या निकल जाय मुंहसे। [प्रस्थान

विक्रमका प्रवेश

विक्रम—महारानी, देवदत्तके साथ क्या गूढ परामर्श चल रहा है?

सुमित्रा—आज मै भैरव मन्दिरमें पूजा करूँगी,—इन्हें पुरोहित नियुक्त किया है।

विक्रम—आज भैरवकी पूजा ? यह कैसे हो सकता है !

सुमित्रा—पापकी मूर्ति देखकर मै डर गई हूँ, जो समस्त भयोंके भय हैं उनकी शरण लूंगी।

विक्रम—पापकी मूर्ति कहाँ देखी ?

सुमित्रा—सतीतीर्थमें सतीधर्मका अपमान किया जा रहा है, और इस राज्यमें उसका कोई प्रतिकार नहीं ! – इस संवादको सुनकर उत्सव मनानेका मेरा साहस जाता रहा है।

विक्रम—यह संवाद किसने दिया तुम्हें ? देवदत्तने ?

सुमित्रा—जो लोग सताये जा रहे है उन्हींमें से एकने।

विक्रम—महारानी, राज-अन्त पुरमें राजाके ऊपर प्रतिद्वन्द्वी न्यायालय स्थापित किया है क्या ? मेरा अधिकार छीनना चाहती हो तुम ?

सुमित्रा—महाराज, धर्मको साक्षी मानकर मै क्या तुम्हारी सहधर्मिणी नहीं बनी ? राज्यका पाप जिस क्षण तुम्हें स्पर्श करता है उसी क्षण क्या मुझे भी स्पर्श नहीं करता ?

विक्रम—देवदत्त, अभियोग कौन लाया है, किसके विरुद्ध अभियोग है ?

देवदत्त—बुधकोटसे आया है एक आदमी, नाम है रत्नेश्वर, शिलादित्यके विरुद्ध अभियोग है।

विक्रम—मुझे लंघन करके रानीके पास कैसे आ पहुँचा यह अभियोग ?

देवदत्त—पूछ ही रहे हो तो सत्य ही कहूँगा, पहले महाराजसे ही किया गया था यह अभियोग।

विक्रम—मैंने क्या नहीं सुना ?

देवदत्त—सुना था। और कहा था कि इस बातपर महाराज विश्वास नहीं करते।

विक्रम—तब तो ठीक ही विचार किया था। मन्त्रीके नाम झूठा अपवाद दिया जाय तो क्या उसका विचार राजा नहीं करेंगे ? जानते हो, शिलादित्यपर जो भार सौंपा गया है वह अत्यन्त कठिन है। प्रत्यन्तदेशकी सीमा-रक्षा करनी पड़ती है उसे।

देवदत्त—राजाके प्रतिनिधिके रूपमें धर्म-रक्षा करना भी उसीका काम है।

विक्रम—कौन कहता है कि उसने धर्म-रक्षा नहीं की ?

देवदत्त—तुम्हारा अपना अन्तःकरण ही कह रहा है, इसीसे मुझपर इतना क्रोध कर रहे हो। अभियोगकारीको मै ही तुम्हारे समक्ष ले गया था। मन्त्रीकी हिम्मत नहीं पड़ी थी। उस दिन भी मैंने देखी नहीं क्या विचार करते समय क्षण-क्षणमें महाराजकी भ्रुकुटि ? दण्ड तुम्हारा कितनी ही वार उद्यत हो-होकर दुविधासे रुक-रुक गया है, क्या इस वातको स्वीकार नहीं करोगे ?

विक्रम—सावधान! मैं दुर्बल हूँ! किसके भयसे दुर्बल हूँ मै!

देवदत्त—शिलादित्यको जो शक्ति तुमने खुद दी है, आज उसका प्रतिरोध करना तुम्हारे अपने लिए भी दुःसाध्य है, यही दुविधाका कारण है। तुम उनलोगोंसे डरने लगे हो, – असलमे हमलोगोंका डर नहीं है।

विक्रम—असह्य है तुम्हारी स्पर्धा! अब तुम्हारे अनुतापके दिन आसन्न मालूम होते हैं।

सुमित्रा—आर्यपुत्र, हमलोगोंको दण्ड देना सहज वात है, उसके लिए राज शक्तिकी जरूरत नहीं होगी। किन्तु शिलादित्यका विचार आज ही होना चाहिए।

विक्रम—जिसका अभियोग है वह है कहाँ ?

सुमित्रा—मैं ही हूँ वह।

विक्रम—तुम ?

सुमित्रा—हाँ,– जो अभागा फरियाद लेकर आया था उसका पता नहीं चल रहा।

विक्रम—अपने झूठके डरसे वह भाग गया है।

सुमित्रा—महाराज, तुम निश्चित जानते हो कि किसने उसे हरण किया है।

विक्रम—महारानी, अन्धी दया और अस्पष्ट अनुमानसे विचार नहीं किया जा सकता।

रत्नेश्वरको साथ लिये नरेशका प्रवेश

नरेश—शिलादित्यके अनुचर इसे जबरदस्ती पकड़े लिये जा रहे थे, राजद्वारके सामनेसे। मेरी मनाही सुनी ही नहीं। आखिर तलवार निकालनी पड़ी, इस बातकी याद दिलानेके लिए कि राजा हैं।

विक्रम—वे क्यों इसे पकड़े लिये जा रहे थे ?

नरेश—बोले कि शिलादित्यका आदेश है। उस आदेशपर तुम्हारा आदेश क्या है, यही सुनना चाहता हूँ।

रत्नेश्वर—महारानी-मा, अब मेरी रक्षा नहीं, मै जानता हूँ,– किन्तु मै विचार चाहता हूँ, और वह आज ही होना चाहिए, तुम्हारे सामने ही होना चाहिए, दुहाई है मा तुम्हारी !

सुमित्रा—मूढ, तुम्हारे सामने ही तो खड़े हैं महाराज। इन्हींसे करो न्यायकी प्रार्थना।

रत्नेश्वर—महाराज, मर्मघाती दुःख है हमलोगोंका, वह दुःख बाधा नहीं मानता, देर नहीं सहता, मृत्यु-यन्त्रणासे भी प्रबल है वह दुःख।

विक्रम—चुप रहो ! देवदत्त, कौन इनलोगोको इस तरह सिर चढा रहा है ? ये लोग बलपूर्वक मुझसे विचार छीन लेना चाहते है ! द्वारपाल कहाँ है ?

द्वारपालका प्रवेश

द्वारपाल—आज्ञा, महाराज ?

विक्रम—इसे प्रहरीशालामें ले जाकर रखो। कल विचार होगा।

द्वारपाल—जो आज्ञा।

रत्नेश्वर—महारानी-मा, मेरा आजका दिन गया, कलके दिनका विश्वास नहीं। बचूँ चाहे मरूँ, जो कुछ होना होगा सो होगा, – पर प्रजाकी फरियाद तुम्हारे चरणोंमें छोड़े जाता हूँ, तुम्हें उसे उठा ही लेना पड़ेगा। मै विदा लेता हूँ।

सुमित्रा—तुम्हारी फरियाद याद रहेगी रत्नेश्वर।

[द्वारपाल और रत्नेश्वरका प्रस्थान

नरेश—महाराज, मन्त्रीने मेरे मारफत कुछ संवाद भेजा है, – शीघ्र मन्त्रणाकी जरूरत है ।

विक्रम—तुमलोग एकके बाद एक उत्पात खड़ा करके ला रहे हो ।

नरेश—उत्पात सृष्टि कर सकें, हमलोगोंमें इतनी शक्ति है महाराज ?

विक्रम—सृष्टि करनेकी जरूरत नही । सत्ययुगमें भी राज्यमें उत्पातोंकी कमी नहीं थी । किन्तु, देशमें उपद्रव फैला करते है समय-समयपर । तुम लोगोने उन्हें आज ही एक दिनमें पुंजीभूत कर दिया है । जो प्रमाण तुमलोगोंके मित्रोंके विषयमें विक्षिप्त रहते हैं, शत्रुके लिए आज तुमलोग उन्हें एकत्र करके काले रंगमें रंगकर मेरे सामने रखना चाहते हो । आज उत्सव-दिवसके प्रकाशमें उस काली मूर्तिको खड़ी करके तुमलोग सिर्फ यही दिखाना चाहते हो कि तुम्हारी जीत हुई । किन्तु यह निश्चय समझो कि तुम्हारी इन बनावटी विभीषिकाके आगे मै हार हरगिज नहीं मान सकता । उत्पातका संवाद है, उसे रहने दो ; जरूर वह कल तक सब्र कर सकता है ।

नरेश—सब्र जरूर कर सकता है, महाराज, किन्तु आज जो संवाद है कल वह संकटका रूप ले-सकता है । तो जाता हूं, मन्त्रीसे कह दूं ।

विक्रम—वे लोग मेरे प्रियपात्र हैं, उनके प्रति मेरा पक्षपात है, उनका विचार मै नहीं कर सकता, उन्हें दण्ड देनेमें मै असमर्थ हूं – तुमलोगोंकी ये-सब बातें झूठ हैं, झूठ हैं । जो दण्डके योग्य हैं उन्हें जब दण्ड दूंगा तब भयसे स्तब्ध हो जाओगे । क्षीण दुर्बल हो तुम्हीं लोग, कर्तव्यके विषयमें तुमलोग जानते क्या हो ! क्षमा, दया और आँसुओंसे तुमलोगोंकी कर्तव्य-बुद्धि पंकिल हो रही है, – तुमलोग विचार करनेकी स्पर्धा करते हो ! समय आयेगा, विचार भी करूंगा ; किन्तु तुम्हारा रोना सुनकर नहीं । महारानी, तुम कहाँ चल दीं ? जाओ मत, ठहरो ।

सुमित्रा—ऐसा आदेश न करो । चलो राजकुमार, उस लता-वितानमें चलो, मन्त्रीने क्या संवाद भेजा है, मै सुनना चाहती हूं ।

विक्रम—महारानी, तुम्हारी यह प्रच्छन्न अवज्ञा मेरे कर्तव्यको और भी असाध्य किये दे रही है । सुन जाओ, मै आदेश दे रहा हूं । लौटो !

सुमित्रा—क्या है, बोलो।

विक्रम—तुम मुझे पहचान न सकीं, – तुम्हारे हृदय नहीं, नारी! शंकरके ताण्डवकी उपेक्षा कर सकती हो क्या? वह तो अप्सराका नृत्य नहीं। मेरा प्रेम, विराट है वह, प्रचण्ड है वह, उसमें मेरा शौर्य है, – मेरे राज-प्रतापसे वह छोटा नहीं। उसकी महिमाको तुम यदि स्वीकार कर सकतीं तो सब सहज हो जाता। धर्मशास्त्र पढा है तुमने, धर्मभीरु हो तुम, – कर्मके दासके कँधेपर कर्तव्यका बोझ लादनेको ही महानता समझना तुम्हारे गुरुकी शिक्षा है! भूल जाओ तुम अपने कानके मन्त्रोंको। जिस आदिशक्तिके महास्रोतके ऊपर सृष्टिका बुद्‌बुद् बहा जा रहा है, उस शक्तिकी विशाल तरगे है मेरे प्रेममें। उसे देखो, उसे प्रणाम करो, उसके आगे अपना कर्म-अकर्म द्विधा-द्वन्द्व सब बहा दो, – इसीका नाम है मुक्ति, इसीको कहते हैं प्रलय, यही लाता है जीवनमें युगान्तर।

सुमित्रा—साहस नही है, महाराज, साहस नहीं है। तुम्हारा प्रेम अपने प्रेमके पात्रको बहुत दूर छोड़ गया है, मै उसके आगे अत्यन्त छोटी हो गई हूं। तुम्हारे चित्त-समुद्रमें जो तूफान उठा है उसमेंसे पार होने लायक मेरी नाव नहीं है, उन्मत्त होकर अगर बहा दूं तो वह एक ही क्षणमें डूब जायगी। मेरी स्थिति तुम्हारी प्रजाके कल्याण-लक्ष्मीके द्वारपर है, वहाँ धूलपर भी अगर मुझे आसन दे देते तो मेरी लज्जा दूर हो जाती। तुम्हारे अपने तर्जन-गर्जनसे ही तुम्हारे कान वधिर हो रहे हैं, कैसे जानोगे तुम कि कैसा भीषण दुःख है तुम्हारे चारों तरफ। कितने मर्मभेदी क्रन्दनकी प्रतिध्वनि दिन-रात मेरे चित्त-कुहरमें क्षुब्ध हुई घूम रही है, तुम्हें उसे समझानेकी आशा मैने छोड़ दी है। जब चारों ही तरफ सभी वंचित हैं तब मुझे तुम चाहे कितनी ही सम्पदा क्यों न दे दो, उसमें मेरी रुचि नहीं हो सकती। चलो राजकुमार, मन्त्रीने क्या प्रार्थना की है, मुझे बताओ चलकर।

विक्रम—सुनो नरेश, क्या संवाद लाये हो, बताओ मुझे।

नरेश—महाराजने युधाजित्‌के प्रति जो पदत्यागका आदेश दिया था,

उसने उसे कतई नहीं माना। इनलोगोंमें आपसमें कोई षड्यन्त्र तय हो गया है मालूम होता है।

विक्रम—कैसे मालूम हुआ ?

नरेश—शिलादित्यको जिस क्षण महारानीने बुला भेजा उसी क्षण वह राजधानी छोड़कर चला गया। महारानीकी आज्ञाकी परवाह ही नहीं की उसने।

विक्रम—फिर संकट बुला लाई न ? राजकार्यमें क्यों तुम हस्तक्षेप करने गई, महारानी ?

सुमित्रा—राजकार्य नहीं, आत्मीयका कर्तव्य था यह मेरा। जालन्धरकी किसी भी बातमें मेरा कोई अधिकार न भी हो, तो कमसे कम काश्मीरका दायित्व तो है ही।

विक्रम—सम्मानी आदमीके अभिमानपर चोट करके यदि असम्मान ही पाया हो तो किसे दोष दोगी तुम ?

सुमित्रा—आत्मीयने यदि आत्मीयकी मर्यादाकी हानि की होती तो उस विषयमें मेरी कोई भी फरियाद नहीं थी। किन्तु जो अपराध राजाके विरुद्ध है, तुम्हारी प्रजाकी तरफसे मै उसीका विचार चाहती हूं।

विक्रम—विचार यदि चाहती हो तो पहले युद्ध करना होगा।

सुमित्रा—हाँ, युद्ध ही करना होगा।

विक्रम—युद्ध ! यह तो नारीके मुंहकी बात नहीं।

सुमित्रा—नारीकी भुजाओंकी सहायता अगर चाहो तो मै तैयार हूं।

विक्रम—देखो प्रिये, विजयके अभिप्रायसे ही युद्ध होता है, आस्फालनके लिए नहीं। उसके लिए समय और सुअवसरकी जरूरत है।

सुमित्रा—राजकुमार नरेश, मै तुमसे पूछती हूं, अत्याचारियोंके हाथसे प्रजाकी रक्षा करनेका क्या कोई रास्ता ही नहीं ?

विक्रम—महारानी, याद रखना, – दयाके अविचारमें भी अन्याय है। 'प्रजापर अन्याय हो रहा है' यह भी जैसे अत्युक्ति है, 'अन्यायकारियोंका शासन करना मेरे लिए असाध्य है' यह भी वैसे ही अश्रद्धेय है। ये-सब बातें न

तो तुम्हारे साथ करनेकी हैं, और न आज करनेकी है। देवदत्त, पौरोहित्य तुम्हें राजासे नहीं मिला – त्रिवेदी पुरोहित हैं। आज उन्हें अवकाश नही है, महारानीकी पूजा कल होगी। राजाके काममें या पूजाके काममें अगर तुम अनधिकार हस्तक्षेप करोगे तो तुमपर भी राजाका हस्तक्षेप प्रीतिकर न होगा। महारानी, तुमने उत्सवका वेश अभी तक धारण नहीं किया! जाओ, राजाका आदेश है, – अभी जाकर वेश परिवर्तन करो। यह तो राजरानीका वेश है—

सुमित्रा—ऐसा ही करूंगी, महाराज, ऐसा ही करूंगी, – वेश परिवर्तन करूंगी। धिक् इस राज्यको! धिक् मुझे! मै इस राज्यकी रानी हूं!

[देवदत्त और विक्रमके सिवा और-सबका प्रस्थान

देवदत्त—महाराज, मै भी जा रहा हूं। किन्तु एक अप्रिय बात कहता जाऊंगा। बिना विचारे जिस दिन उन काश्मीरियोंके हाथ अधिकार दिये थे उस दिन राज्यमे विद्रोहकी सूचना हुई थी। कितने ही आदमियोंको प्राणदंड दिया गया, कितने ही निर्वासित कर दिये गये। कितने ही अभिजात-वंशके प्रतिष्ठित व्यक्ति दूसरे राज्यमें चले गये। इतनी बाधा पानेके कारण ही, आत्माभिमानकी ताड़नासे महाराजका हठ इतना दुर्धर्ष हो उठा था।

विक्रम—देवदत्त, इतिहास दुहरानेकी क्या कोई जरूरत आ पड़ी है?

देवदत्त—महाराज, और मुझमें कोई सामर्थ नहीं, मैं केवल संकट सामने रखकर अप्रिय बात तुम्हे सुना सकता हूं। एक दिन, मात्र एक अस्त्रकी युक्तिसे तुमने प्रमाणित करना चाहा था कि इस राज्यमें सभी भूल कर रहे है एक तुम्हारे सिवा। बहुतसे कण्ठ छेदकर राज्यका कण्ठरोध किया था। इतने बड़े प्रकाश्य अहंकारका भ्रम-संशोधन अन्तमें महाराजके लिए दु साध्य होगा, यह मै जानता हू। इसीलिए आज स्वयं विधाताको लेना पड़ा है उसका भार।

विक्रम—इस बातका सहज अर्थ है, तुमलोग विद्रोह करोगे?

देवदत्त—महाराज जानते हैं कि मेरे लिए वह असाध्य है। देवता हो गये हैं विद्रोही, राज्यमें तूफान आ गया है, कठिन दु खमें इसका अवसान है।

विक्रम—देवताका नाम ले रहे हो मुझे डरानेके लिए ?

देवदत्त—महाराज, तुम्हें डराना क्या हँसी-खेल है ? तुम्हारा भय हमारे लिए सबसे बढ़कर भयानक है। उठाओ अपना दण्ड, पहला वार होने दो हमपर ही, जो तुम्हारे एकान्त अपने हैं। तुम्हारे अन्यायको जिन लोगोंने अपनी लज्जा बना लिया है, तुम्हारे क्रोधको दु खके रूपमें वे ही झेलें अपने सरपर। मुझे दण्ड दो, महाराज !

विक्रम—अगर न दूं ?

देवदत्त—अग्रसर होकर लूंगा। आज हमारे लिए आराम नहीं है, सम्मान नहीं है। जाओ महाराज, तुम उत्सव मनाओ। मुझे रुद्रभैरवकी पूजा करनी ही पड़ेगी। मन्दिरमें प्रवेश न करने दो, तो न सही,– उनकी पूजाका आह्वान आज सुनाई दे रहा है सर्वत्र इस राज्यकी हवामें।

विक्रम—स्पष्ट बात कहनेके छलसे मेरा अपमान करना चाहते हो ! मेरी बात भी एक दिन अत्यन्त स्पष्ट हो उठेगी,– अब देर नहीं।

[दोनोंका प्रस्थान

विपाशाका प्रवेश

विपाशा—सुनो सुनो, राजकुमार, सुनो !

नरेशका प्रवेश

नरेश—कहो, क्या कहती हो ?

विपाशा—यह माला तुम्हारी है, वीरके कंठके योग्य।

नरेश—परिचय मिल गया ?

विपाशा—मिल गया।

नरेश—इतनी आसानीसे ?

विपाशा—मैं अनागतको देख रही हूं।

नरेश—क्या देख रही हो ?

विपाशा—जालन्धरकी रानीके सम्मानकी तुम रक्षा करोगे। चुप क्यों हो रहे, कुमार ?

नरेश—बात करनेका अभी समय नही आया ।

विपाशा—मै कहती हूँ कि बात करनेका समय चला गया ।

गीत

छिपके आया आलोक - चुरानेवाला,
छा गया अँधेरा काला।
तिमिर-जयी जो वीर हमारे,
आज वक्तपर कहाँ सिधारे !
कुहरा छाया, जीतें कैसे,
दीक्षा है लेनी तुम ही से।
तूफ़ान प्रलयका उठा आज है,
ताण्डव प्रचण्डका बँधा साज है,
छा गया अँधेरा काला,
छिपके आया आलोक - चुरानेवाला।
मलिन हो गये शुभ्र बसन सब,
अरुण-स्वर्णका हुआ हरण जब,
लज्जासे ऊषा ज्योतिर्मय पहने काला साज
सुप्ति-समुदके तट-पथसे वह चली आ रही आज।
कहाँ गईं वे रवि-किरणें जो तमको तुरत हटातीं,
उदय-शिखरपर चढकर कोई गीत उदयका गाती।
गीत प्रातका सुनते ही आलोक - मिटानेवाला
सरपट भाग खडा होगा करके अपना मुँह काला,
आलोक - चुरानेवाला।

नरेश—यह गीत तुमने कहाँ सीखा था, विपाशा ?

विपाशा—काश्मीरमें मार्तण्डदेवके मन्दिरमें गाया करती थीं इसे हम, उत्सवके दिन, हेमन्तमें, जब पर्वत-शिखरपर आलोक-राज्यमें अराजकता छा जाती है।

नरेश—यह गीत तुमने मुझे क्यों सुनाया ?

विपाशा—यहाँके क्लिष्ट आकाशमें तुम्हीं हो आलोकके दूत। टूट जाय मीनकेतुकी वेदी, वहाँ तुम्हारा आसन अमायगा नहीं। रुद्रभैरवका निर्माल्य लाऊँगी तुम्हारे लिए। यहाँ जो भैरव हैं, वे ही काश्मीरमें मार्तण्ड हैं, उस देवताको प्रसन्न करो, वीर! आज सवेरे आर्तोंके त्राणके लिए जो कृपाण निकाली थी, दो एक वार उसे मेरे हाथमें। (तलवार माथेसे छुआकर) रुद्रके तृतीय नेत्रमें तुम्हीं अग्नि हो, प्रभात-मार्तण्डकी दीप्त दृष्टिमें तुम्हीं रौद्रच्छटा हो, वीरके हाथमें तुम कृपाण हो, तुम्हें नमस्कार है।

जागो, हे रुद्र, जागो!
सुप्ति - जड़ित तिमिर - जाल
दूर करो जगतपाल!
जागो, तुम जागो।
आओ रुद्ध द्वारपर
विमुक्त करो क्लेशहर
तन - मन - प्राण धन - जन - मान
हे महाभिक्षु, माँगो।
जागो, हे रुद्र, जागो!

—राजकुमार, यह देखो!

नरेश—वही कमलकी कली मेरी! अभी तक रख छोड़ी है ?

विपाशा—यह आज बोल उठी है, – काश्मीरका हृदय आज जाग उठा है इसमें।

नरेश—देखो, राजा आ रहे हैं मन्त्रीके साथ। शायद मुझसे कोई काम है। तुम मन्दिरके प्राङ्गणमें जाकर प्रतीक्षा करो, वहीं मिलूंगा मै।

[विपाशाका प्रस्थान

विक्रम और मन्त्रीका प्रवेश

विक्रम—प्रजा विद्रोही हो गई है! कहाँ ?

मन्त्री—बुधकोटमें, सिंहगढ़में ।

विक्रम—क्षमाकी बात न कहना। अक्षमकी स्पर्धा सबसे ज्यादा क्षमाके अयोग्य है ।

नरेश—वास्तवमें उनका विद्रोह विदेशी सामन्तोंके विरुद्ध है ।

विक्रम—वे क्या मेरे प्रतिनिधि नहीं हैं ?

नरेश—तब नहीं हैं जब वे अपना स्वार्थ देखते हैं, प्रजाका नहीं देखते, राजाका नहीं देखते । मुझे आदेश दो, मैं जाकर प्रजाको शान्त किये आता हूं ।

विक्रम—तुम ! मेरे सुदृढ शासनको ढीला किया है तुम्हीं लोगोंने । प्रजाको सर चढाकर महारानीका साथ दे रहे हो तुम्हीं, विदेशियोंके प्रति ईर्षा तुम्हारी तरह ऐसे स्पष्ट रूपसे प्रकट करनेका साहस किसीने नहीं किया। प्रतिहारी, महारानी कहाँ हैं ? मेरा आह्वान अभी उन्हें जता आओ जाकर । वे सुन जायें आकर, उनकी दयासे दर्पित प्रजा आज विद्रोहपर उतारू हो गई है,–कायरोंने विद्रोह करनेका साहस किया है उन्हींके भरोसे । पर, वे क्या उन्हें बचा सकेंगी ? विचारका परिणाम सबसे पहले उन्हींको ग्रहण करना होगा । अभी, इसी समय । आज दिखा दूंगा कि तुमलोगोंने गलती की है । तुम्हारी महारानीका-सी विचार होगा । सोचते होगे, उन्हें मै निर्वासन-दण्ड नही दे सकता, क्यों ? हुः हुं , हमारा वंश रामचन्द्रका वंश है, सूर्यवंश !

मन्त्री—महाराज !

विक्रम—क्या कहते हो, कहो । स्तब्ध क्यों हो गये ?

मन्त्री—सामन्तराजोंकी सेना निकट आ पहुँची है । शिलादित्य उनके सेनापति हैं ।

विक्रम—सिंहासनके प्रति लक्ष्य है ?

मन्त्री—हाँ, महाराज ।

विक्रम—प्रतिरोधकी क्या व्यवस्था की है ?

मन्त्री—सेना तैयार नहीं है। उन सबका विश्वास करना भी कठिन है।

नरेश—मुझपर भार दीजिये, महाराज। दुविधा करनेका समय नहीं है। मै सेनाको तैयार करूँ जाकर।

विक्रम—प्रतिहारी, महारानी कहाँ हैं ?

प्रतिहारी—वे अन्त पुरमें नहीं हैं।

विक्रम—कहाँ हैं वे ? भैरव-मन्दिरमें ?

प्रतिहारी—वहाँ भी दर्शन नहीं मिले।

विक्रम—कहाँ गईं तो ?

प्रतिहारी—द्वारपाल कहता है, घोड़ेपर सवार होकर वे उत्तरकी तरफ चली गई हैं।

विक्रम—इसका क्या अर्थ ? राजकुमार, तुम निश्चय जानते हो वे कहाँ गई हैं।

नरेश—मुझे कुछ भी नहीं मालूम, महाराज।

विक्रम—चली गईं ? विद्रोही प्रजाको उत्तेजित करनेके लिए ? लौटा लाओ उन्हें, पकड़के ले आओ, बाँधके ले आओ जंजीरोंसे,– स्वेच्छाचारिणी !

नरेश—ऐसी बात मुँहसे न निकालो, महाराज। हमलोगोंसे नहीं सही जायगी।

विक्रम—मुग्ध हूं मै! धिक्कार है, मुझे! अन्धा हूँ, देख नहीं सकता, सिंहासनकी ओटमें छिपी काश्मीरकी कन्या षड्यन्त्र कर रही थी! स्त्रियोंका विश्वास नहीं, कोई विश्वास नहीं। अन्त पुरमें उसे कौन रखेगा। कारागार ही उसके लिए योग्य स्थान है।

नरेश—ऐसी पाप-चिन्ता न कीजिये, महाराज।

विक्रम—तुम सब इसमे शामिल हो। तुम भी हो, जरूर हो। चली गई! पहले तुमलोगोंको दण्ड देकर पीछे दूसरा काम करना है। देवदत्त कहाँ है ? कहाँ है वह विश्वासघातक!

मन्त्री—व्यर्थ चंचल न होइये, महाराज। महारानी मनको शान्त करने गई हैं, निश्चय ही वे स्वय लौट आयेंगी। अधीर होकर उनका अपमान करनेसे हमेशाके लिए हम उन्हें खो देंगे।

विक्रम—लौट आयेंगी, सो क्या मै नहीं जानता ? मुझे केवल स्पर्धा दिखानेके लिए चली गई हैं। सोचती होंगी, मै उन्हे मनाकर, प्रार्थना करके लौटा लाऊँगा। गलत समझा है उन्होंने। मुझे ऐसा कापुरुष समझ रखा है ! मेरा परिचय नहीं मिला अभी उन्हें। निष्ठुर होनेकी प्रचण्ड शक्ति है मुझमें। मुझसे डरना ही होगा, अब समझ जायेंगी।

दूतका प्रवेश

दूत—उत्तर-पथसे महारानीका यह पत्र आया है, महाराज।

विक्रम (पत्र पढते-पढते)—राजकुमार नरेश, देखो, सुमित्राने यह-सब क्या लिखा है। इसके मानी ?—"विवाहके पहले एक दिन रुद्रभैरवकी सेवामें अपनेको उत्सर्ग करने गई थी। उन्हींकी वलि वापस लाकर दी थी तुम्हें, तुम्हारे राज्यको। व्यर्थ गई वह वलि, तुम भी न पा सके, तुम्हारे राज्यको भी पानेमे वाधा उपस्थित हुई।"

नरेश—महाराज, तुम तो जानते हो, महारानी आगमें कूदने गई थीं, पुरवासियोंने उन्हें लौटाकर तुम्हारे हाथ सौंपा था।

विक्रम—उस आगको वे जो साथ लेती आई ! उससे दग्ध कर दिया मुझको। यह लो नरेश, पढो, मेरी आँखोंके आगे ये अक्षर नृत्य कर रहे हैं, मुझसे पढा नहीं जाता।

नरेश—महारानी लिखती हैं, "मै जिनकी सेवामे निवेदित हूँ, उन्हें उनका अर्घ्य वापस देने जा रही हूं। काश्मीरके ध्रुवतीर्थमें मार्तण्डदेव मुझे ग्रहण करेंगे। रूपसे मै तुम्हें तृप्त नहीं कर सकी, शुभकामनासे तुम्हारे राज्यका अकल्याण दूर करनेमें भी असमर्थ रही। तपस्या यदि सार्थक हुई, यदि देवताको मै प्रसन्न कर सकी, तो दूरसे तुमलोगोंका मंगल कर सकूंगी। मेरी कामना न करना, यही मेरा तुमसे अन्तिम निवेदन है। मुझे त्याग दो, तुमलोगोंको शान्ति मिले।

विक्रम—नहीं दिया, उन्होंने कुछ भी नहीं दिया मुझे, सब धोखा है। नारी जो सुधा लाई है मेरी दीनतम प्रजाके घर, मै राज्येश्वर होकर भी

उसका एक कण भी न पा सका, - मेरे दिन और रातें तृष्णाके मारे सूख गई हैं, सुधा-समुद्रके किनारे बैठकर भी उन्हें सुधाकी एक बूंद भी नहीं मिली। नरेश, आज मुझे क्या करना चाहिए, बताओ, - अपने मनको मै स्थिर नहीं कर पा रहा हूँ।

नरेश—महाराज, मेरी बात अगर सुनो तो कहूं, - अब उन्हें वापस लानेकी चेष्टा न करना ही अच्छा है।

विक्रम—क्या कहा! वापस लानेकी चेष्टा न करूं! विश्वके सामने अपने पौरुषको धिक्कृत होने दू! ले आओ पहले उन्हें यहाँ, उसके बाद सबके समक्ष उन्हें त्याग दूंगा। राष्ट्रपालसे कहो, उन्हें बन्दी करके उपस्थित करे मेरे सामने।

नरेश—ऐसा नहीं हो सकता, महाराज, नही हो सकता। तुम्हारा अनुमोदन करके मै तुम्हारी अवमानना नहीं कर सकता। तुम्हारी राज्यकी सीमा पार करनेमें अब भी उन्हें तीन-चार दिन लगेंगे। मै स्वयं जाऊंगा उन्हें लेनेके लिए।

विक्रम—जाओ तो, अभी जाओ, जल्दी जाओ। [नरेशका प्रस्थान] —मंत्री, तुम सोचते होगे, उन्हें मै क्षमा करके वापस बुलवा रहा हू! बिलकुल नहीं। राज-विद्रोहिणी हैं वे, मै स्वय ही देता उन्हें निर्वासन-दण्ड। मेरे दण्डसे बचकर वे भाग गईं, इसी बातका क्षोभ है मुझे।

मंत्री—महाराज, उन्हें दण्ड देनेकी बात कहकर हम सबको दु ख दे रहे हैं। उनके पास आते ही देखेंगे कि उन्हें दण्ड देनेका सामर्थ्य नहीं है आपमें।

विक्रम—सो हो सकता है, मै मुग्ध हूं। मेरा मोहपाश टूट जाय, नष्ट हो जाय झूठा जाल, मै नहीं बुलाऊंगा उन्हें अपने पास। प्रतिहारी, राजकुमार नरेशको शीघ्र लौटा लाओ। जाने दो, जाने दो, काश्मीरकी कन्याको काश्मीर लौट जाने दो।

मंत्री—दासका विनय सुनिये, महाराज! राजकुमार नरेशको उन्हें वापस ले आने दीजिये। उसके बाद, आजकी इस क्षत-वेदनाको भूलनेमें देर न लगेगी।

विक्रम—प्रार्थना करके वापस बुलाना ! नहीं, नही, हरगिज नहीं। एक दिन युद्ध करके उन्हे जालन्धर लाया था, आज भी युद्ध करके ही उन्हें जालन्धर वापस लाऊंगा।

मंत्री—युद्ध करके ?

विक्रम—हाँ, युद्ध करके। काश्मीरके अभिमानमें वे काश्मीर जा रही हैं, – जालन्धरका अपमान घोषित करने ! पदानत धूलिशायी काश्मीरकी आँखोंके ऊपरसे ही लाना है उन्हें बन्दिनी करके, जैसे दासीको लाते हैं। काश्मीरकी ही स्पर्धा मनमें छिपाये-हुए उन्होंने इतने दिनों तक मेरी उपेक्षा की है। इस वार तलवारसे उसकी जड़ खोदकर फेंक दूंगा, तभी मुझे शान्ति मिलेगी। मंत्री, व्यर्थ बहस करनेकी कोशिश मत करो, – इसी क्षण सेना तैयार करनेको कहो जाकर।

मंत्री—महाराज, इस बीचमें क्या बिना बाधाके विद्रोही सामन्तराजोंको राज्य अधिकार कर लेने देंगे ?

विक्रम—नही।

मत्री—तो फिलहाल इनसे युद्ध कर लिया जाय, पीछे दूसरी बात।

विक्रम—इनसे युद्ध नहीं करना है।

मत्री—तो ?

विक्रम—सन्धि।

मंत्री—क्या कहा महाराजने, सन्धि ?

विक्रम—हाँ, सन्धि करूंगा। वे ही होंगे मेरी काश्मीर-युद्धयात्राके साथी।

मत्री—सन्धि करोगे ? महाराज, क्षोभके आवेगमें ही ऐसी बात कह रहे हो।

विक्रम—मंत्री, तुम्हारा मंत्रणा देनेका समय चला गया। अब तुम बिना विचारे मेरा आदेश पालन करो।

मंत्री—फिर भी कहना पड़ेगा, महाराजने जैसा संकल्प किया है उससे राज्यकी समस्त प्रजा उन्मत्त हो उठेगी।

विक्रम—उन्मत्तता गुप्त रहती है तो स्थायी हो जाती है। उन्मत्तता प्रकट होनेपर ही उसका दमन करना सहज होता है। उसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। दूतको बुला भेजो। [दोनोंका प्रस्थान

कन्दर्पकी पुष्पमूर्ति और पूजाके उपकरण लिये-हुए
विपाशा और तरुणियोंका प्रवेश

गीत

नाचो गाओ, मन बहलाओ, उत्सव आज मनाओ।
बकुल-गन्धने मन भर दीना,
झंकृत कर दी उरकी वीणा,
सज-धज आई आज नवीना,
मधु-सागरकी हम हैं मीना।
आओ आओ, मीनकेतु हे,
नन्दन-तटसे नाव बहाओ, उत्सव आज मनाओ।

विपाशा (गाते-गाते रुककर)—महाराजने कहा है, यहींसे यात्रा आरम्भ होगी। माधवी-वितानमे वे हम-सबके साथ चलेंगे। कहाँ हैं वे, दिखाई नहीं देते!

प्रथमा—हमारा गीत सुनते ही दर्शन देंगे।

गीतकी पुनरावृत्ति

छाया आनँद चारों ओर,
मधु-रस पी सब हुए विभोर,
कोयल - तरुणी रही पुकार,
देखो, सखि, मन्मथकी मार,
आओ आओ, मीनकेतु हे, और न हमें सताओ,
उत्सव आज मनाओ।

द्वितीया—लेकिन महाराज अभी तक नहीं आये, – गोधूलिका लग्न जो

निकला जा रहा है। देखो न, सखी, आकाशमें चाँदकी रेखा दिखाई दे गई, — महाराज नहीं दिखाई दिये।

विपाशा—जब आया तो क्या, और गया तो क्या! हमें उससे क्या! गाओ गाओ, गीत बन्द न करो। महाराजने कहा है, उत्सवको जगाये रखना, जरा भी म्लान न होने पावे।

गीतकी पुनरावृत्ति

नभके पार बिछाकर आसन
चिर-विरही बैठा गाता,
आशाका बीन बजाता।
राह देखती हम राजाकी, आओ, अब तो आओ,
उत्सव आज जगाओ।

विक्रमका प्रवेश

विपाशा—महाराज, समय हो गया।

नरेश—चली गई।

विपाशा—कौन चली गई?

नरेश—हमारी महारानी।

विपाशा—कहाँ गई?

नरेश—तुम्हें नहीं मालूम?

विपाशा—नहीं तो!

नरेश—घोड़ेपर सवार होकर अकेली चली गई काश्मीरकी तरफ।

विपाशा—कहो कहो, पूरी बात माफ-साफ कहो न!

नरेश—पत्र भेजा है, वे अब नहीं लौटेंगी,—ध्रुवतीर्थके मार्तण्ड-मन्दिरमें रहेंगी।

विपाशा—अहा, कितने आनन्दकी बात है! आखिर मुक्ति मिली इतने दिन बाद।

नरेश—विपाशा, उन्हें तो यहाँ कोई बाँध नहीं सका था।

विपाशा—जंजीरसे नहीं बाँधा, पर पिंजड़ेमें तो रखा ही था। पंख सोनेसे मढ़वा दिये थे। पकड़ना चाहा तो हाथसे खो दिया। इस खोनेकी कैसी अपूर्व महिमा है! सूर्यास्त-रश्मिकी पश्चिमयात्रा है। किन्तु इन अन्धोंको क्या उस पूण्य-रूपकी छटा दिखाई दी?

नरेश—हमलोग जायेंगे उन्हें वापस लेने। इस समय वे नन्दीगढके मैदानसे जा रही होंगी।

विपाशा—न जाओ, न जाओ, वे तुमलोगोंकी नहीं हैं। न तो वे पहले मिली थीं और न अब मिलेंगी। आज भग्न-उत्सवके भीतरसे उन्हें छुटकारा मिला है, पाषाणकी छाती फाड़कर निकलनेवाले निर्झरकी तरह।

गीत

हे नटराज हमारे!

नाच प्रलयका शुरू किया जब

सुध-बुध अपनी भूल गये तब

खुले जटाके बन्धन सारे, हे नटराज, तुम्हारे,

(फिर) धारा मुक्त बही गंगाकी,
रही न सुध फिर किसी दिशाकी,
गूँज उठी संगीत - तरंगें, क्या संगीत सुना रे !
हे नटराज हमारे !
नभमें उदय हुआ रविका जब
बोल उठी आलोक-रश्मि तब,
'आज अभय है, कहीं न भय है, मै हूँ साथ तुम्हारे !'
करो मुक्त बन्धनसे सारे, हे नटराज हमारे !

—काश्मीरमें यह गीत हम पहाड़पर गाया करती थीं, वसन्तमें जब तुषार गल-गलकर निकल पड़ता है निर्झरके वेशमें प्रलयका नृत्य करता-हुआ। यही तो है उसका समय, आज वहाँ फाल्गुणका स्पर्श लग गया है पहाड़के शिखर-शिखरपर, हिमालयका मौन गया है टूट !

नरेश—आज तुम खुश हो, विपाशा ?

विपाशा—बहुत खुश हूं।

नरेश—कोई भी दु ख नहीं आज तुम्हारे मनमें ?

विपाशा—ऐसा सुख कहाँ पाऊँगी, कुमार, जिसमें कोई दु ख ही नहीं !

नरेश—बन्धन तो कट गया, अब तुम क्या करोगी ?

विपाशा—जिनके साथ घरमें थी उन्हींके साथ रास्तेमे निकल पड़ूँगी।

नरेश—तुम्हें भी अब नहीं लौटाया जा सकता ?

विपाशा—क्या होगा लौटाके, मीत ? – बाँधना चाहोगे तो गलती कर बैठोगे।

नरेश—अच्छा, जाओ तुम। मेरा मन कहता है, मिलेंगे किसी दिन। यहाँ मेरे लिए भी स्थान नहीं।

विपाशा—क्यों नहीं है, कुमार ?

नरेश—महाराजने तय कर लिया है, काश्मीर युद्ध करने जायेंगे वे, और युद्धमें जीतकर लौटा लायेंगे महारानीको।

विपाशा—यह तो बड़ी अच्छी बात है। इस तरहके क्रोधसे ही अगर राजाका पौरुष जाग उठे तो वह भी अच्छा।

नरेश—गलती कर रही हो, विपाशा! यह पौरुष नहीं, बल्कि असंयम है, – क्षत्रियका तेज इसे नहीं कहते। जिस उन्मत्ततामें आज तक वे अपनेको भूले रहनेमें नहीं शरमाये, यह भी उस उन्मादनाका ही एक रूप है। किसी भी रूपमें हो उन्हें मोहमादकता चाहिए ही, अपनेको भूलना ही होगा, यही उनकी प्रकृति है। मीनकेतुके ही केननमें रक्तका रंग लगाने चले हैं,– अब कल्याण नहीं। मुझे भी जाना पड़ेगा काश्मीर।

विपाशा—युद्ध करने?

नरेश—महारानीको यह बात जताने कि जो लोग काश्मीरमें युद्ध करने आये हैं वे जालन्धरके कुत्ते हैं, उनके पापको देखकर वे हम-सबको अपराधी न समझें।

विपाशा—जाओगे तुम? सचमुच जाओगे?

नरेश—हाँ, सचमुच जाऊँगा।

विपाशा—तो मैं भी तुम्हारे पथकी पथिक हूँ।

नरेश—तो इतना याद रखना, इस पथका अवसान कभी न होने पाये।

विपाशा—तो तुम क्या अब कभी न लौटोगे?

नरेश—लौटनेका दरवाजा बन्द है, विपाशा। राजा मुझे सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगे हैं। अन्धे संशयके हाथमें जहाँ राजदण्ड है, राजाके अन्तरंगोंका स्थान वहाँसे बहुत दूर है।

[दोनोंका प्रस्थान

—

२

काश्मीर

प्रथम—कहते क्या हो! तब तो सत्यानास ही समझो!

द्वितीय—चलो, अब देर करना ठीक नहीं।

प्रथम—ठीक मालूम है तुम्हें?

द्वितीय—तराईमें गया था मै, भालूका चमडा बेचने,—सो खुद अपनी आँखसे देख आया हूँ जालन्धरकी फौजका पड़ाव। और धनदत्तको भी देखा है, चन्द्रसेनके दूतको। दोनों पक्षोंमें समझौतेकी बात चल रही है।

प्रथम—उन्हें रोका नहीं जायगा?

द्वितीय—कौन रोकेगा? काका-महाराज तो अपना रास्ता साफ करनेमें लगे हुए हैं। अबकी बार जब कि हम सब प्रजा मिलकर युवराजको राजा बनानेको खडे हुए, तो ऐसी तकदीर कि ठीक इसी समय विदेशी डाकू आ धमके। काका-राजा अबकी बार काश्मीरके राज-छत्रपर जालन्धरका छत्र चढाकर सिंहासनपर अपना कब्जा पक्का कर लेनेकी कोशिश कर रहे हैं।

प्रथम—मगर देखो, बलभद्र, इस बातका अभी शोर मचाकर अभिषेकको मिट्टीमें न मिला देना। अभिषेकका काम चलू रहे तो अच्छा है, आज ही सब पूरा हो जायगा। इस बीचमें हमलोग जो-कुछ कर सकते है, करें जाकर। रणजीतको भेज दो पत्तन। और जठिया जाकर खबर पहुँचा दो तुम,—मै जाता हूँ रंगीपुर। घोड़े जितने भी मिल सकें, पकड़ लाना चाहिए। पंचमढीके महाजनोंके गेहूंके गोदामोंपर कब्जा कर लेना जरूरी है,—कमसे कम छै महीनेकी रसद इकट्ठी कर लेनी चाहिए।

द्वितीय—अबकी बार हम जीयें या मरें, उस पिशाचका अभिप्राय तो हरगिज न सिद्ध होने देंगे। कुमारका अभिषेक आज हो ही जाना चाहिए। उसके बाद ही तुरत चन्द्रसेनको राज-विद्रोही घोषित करा देना होगा। अरे, तुमलोग कहाँ चले,—जल्दी जाकर तोरण सजाओ। भेरीवालोंसे कह दो जाकर कि तुरत भेरी बजावें।

प्रथम—पहले सबोंको इकट्ठा होने दो। अजी ओ महीपाल, सुनो सुनो, तुमसे बहुत जरूरी काम है।

महीपाल—क्यों, क्या बात है ?

द्वितीय—बात यहाँ बतानेकी नहीं है। चलो, उधर चलो। देर न करो।

प्रथम—अभी-अभी खबर मिली है कि चन्द्रसेन आ रहे हैं इधर,—शायद अभिषेकमें रुकावट डालनेके लिए।

द्वितीय—नहीं, मेरा खयाल है, कौशलसे युवराजको सावधान करनेके लिए। चन्द्रसेन और सब-कुछ कर सकते हैं, पर, कुमारको कोई कैद करके ले जाय, इस बातको वे बरदाश्त नहीं कर सकते। खैर कुछ भी हो, चलो, अब देर करना ठीक नहीं। [सबका प्रस्थान

और-एक दल

प्रथम—बात क्या है भाई ?

द्वितीय—तुम तो आसमानसे गिरे हो मालूम होता है !

प्रथम—बात तो कुछ ऐसी-ही है, मुझपर जो बीती है सो मैं ही जानता हूं। तुमसे तो कोई बात छिपी नहीं, किसी दिन पेटके खातिर काका-राजाके सिपाहियोंमें नाम लिखाना पड़ा था। स्त्रीकी देह तो गहनोंसे भर गई, पर मारे शरमके उसने पनघटमें जाना बन्द कर दिया। हमारे मुहल्लेमें एक कुन्दनजी रहते हैं, सबके नामपर वे कवित्त बनाया करते हैं। मेरा नाम रख दिया उन्होंने, 'चचा-गणेशका चचेरा चूहा'। सुनकर लोग हँसते-हँसते बावले हो गये।

तृतीय—वाह वाह, नाम तो बड़े मजेका निकाला कुन्दनने। देशमें चचेरे-चूहोंकी भरमार दिनों-दिन बढती ही जाती है। घरकी भीतों तकमें छेद कर डाले हैं, जहाँ देखो वहीं दाँत गड़ाते चले जा रहे हैं। अब उनके बिलोंमें आग लगाना है। हाँ, फिर क्या हुआ, बुद्धू, पीठपर गणेशजीकी सूंड़का उपद्रव बरदाश्त नहीं हुआ मालूम होता है ?

प्रथम—बहुत दिनोंसे सहता आ रहा था। आखिर काका-राजाने खुश होकर मुझे प्रहरीशालाका सरदार बना दिया। उस दिन अचानक रास्तेमें मिल गई मेरी छोटी साली। तुम तो जानते ही हो उसे—

द्वितीय—अजी, खूब जानते हैं! वही रूपवती तो,– क्या शान है उसकी! तुम्हारे कुन्दनने तो उसका नाम रख छोड़ा है, 'मरण-बाण'।

प्रथम—उसने मुझे देखते ही बायाँ पैर उठाकर जमीनपर एक लात मारी, धूल उड़ा दी, उसकी पायजेबें बज उठीं छम-छम-छम,– फिर मुँह बनाकर चल दी बड़े तावसे। मुझसे सहा नहीं गया।

तृतीय—ह ह ह.ह! रंगीन पाँवोंकी एक ही चोटसे चचेरे-चूहेकी पूँछ कट गई!

प्रथम—अपनी पगड़ी उठाकर फेंक दी मैंने प्रहरीशालाके द्वारपर; चल दिया उत्तरकी तरफ मालखण्ड। गरमी-बरसातमें भेड़-बकरियाँ चराया करता हूं वहाँ, जाड़ोंमें आता हूं राजधानीमें कम्बल बेचने। प्रतिज्ञा कर रखी है कि जब हाथमें कुछ पैसे होंगे तो पगडीमें लगवाऊंगा सोनेकी किनारी, और फिर जाऊंगा उस सालीके घर। अपने बायें पैरकी लात वह वापस ले ले, तब दूसरी बात। यही बात सोचता-हुआ अपनी बकरियाँ लिये-हुए घर जा रहा था कि रास्तेमें कुछ आदमी मिल गये, और वे खदेड़कर मुझे यहाँ ले आये, बोले, 'यहीं हमारी राजधानी है, इस उदयपुरमें।'

द्वितीय—मूरखराम, याद रखना, आजसे इसका नाम उदयपुर नहीं, कुमारपुर है।

प्रथम—याद रखना मुश्किल हो जायगा, भाई, यहाँ मेरे दादा-ससुरका घर है,—

तृतीय—तो फिर फिक्रकी क्या बात है,– नये राज्यमें तुम्हारे दादा-ससुरका नाम नया कर दिया जायगा।

प्रथम—सो तो कर दोगे, लेकिन हमारे बकरियोंके महाजन तो वहीं रहते हैं जिसे अब तक हम राजधानी समझते आ रहे थे। महाजनोंसे लेना भी है, और देना भी। नहीं तो उनके नाम भी बदल दिये जाते तो बड़ी खुशी होती।

द्वितीय—अच्छा जाने दो, काका-राजाके राज्यका देना कुमार राजाके राज्यमें माफ कर दिया गया।

प्रथम—और लेना ?

द्वितीय—उसपर पीछे विचार किया जायगा,– मौकेसे।

प्रथम—पेटकी तकीद मौका नहीं देखती, भाई सा'व! खैर जाने दो, तुमलोगोंके जबानी जमा-खर्चसे तो राजधानी नहीं बनती दीखती, चेहरे तो वैसे नहीं दिखाई देते!

तृतीय—सभी-कुछ आँखोंसे नहीं देखा जाता, कुछ मनसे भी देखना चाहिए।

प्रथम—लेकिन भेड़-बकरियोंके दाम मन-ही-मन मिलनेसे मेरा काम नहीं चलनेका। बात जरा साफ-साफ समझा दो तो अच्छा हो।

तृतीय—तो सुनो, कुमारसेन तीर्थसे लौट आये, फिर भी काका-महाराज सिंहासनसे लिपटे ही रहे। देखा कि खींचातानी करनेमें खूनखराबी होगी; इसलिए तय किया है कि यहीं युवराजकी राजधानी कायम करके उन्हें राजा बना दिया जाय। आज ही अभिषेक है।

प्रथम—इस अखरोटके जंगलमें ?

द्वितीय—कहाँका गँवार है यह! अरे, जहाँ राजा बैठते है वहीं राज-सिंहासन होता है। और, तुझे अगर इन्द्रके आसनपर भी बिठा दिया जाय-न, तो भी, उसके नीचेसे भेड़-बकरियाँ ही बोलती रहेंगी! समझमें आया कुछ!

प्रथम—वे न बोलें तो भी आराम नहीं मिलनेका, भाई, मन उदास हो जायगा। लेकिन एक बात मेरी समझमें नहीं आ रही। पहले थे एक राजा, अब हुए दो राजा,– आखिर इतना बोझ कैसे सहा जायगा ? एक घोड़ेपर दो सवार है, एक लगाम खींचेगा पूँछकी तरफ और दूसरा खींचेगा मुँहकी तरफ,– आखिर जानवर चलेगा किधर ?

द्वितीय—अरे मूरख, जानवरसे बढकर मुसीबत है सवारोंकी,– जो पूँछकी तरफ रहेगा उसे पहले खिसक जाना पड़ेगा। समझा कुछ ?

प्रथम—अभी समझना बहुत बाकी है। पूँछका सवार गिरनेके पहले हमें मालगुजारी किसे देनी पड़ेगी ?

तृतीय—महाराज कुमारसेनको।

प्रथय—फिर ?

तृतीय—फिर तेरा सिर !

प्रथम—चचा-गणेशने तो सिंहासनपर बैठकर उपवासका व्रत नहीं लिया, जब उनके पेटमें चूहे दौड़ेंगे तब क्या होगा ?

द्वितीय—चूहोंकी फिकर करें गणेशजी। हम-सबोंने प्रतिज्ञा की है, मालगुजारी देंगे महाराज कुमारसेनको, और किसीको नहीं।

प्रथम—ठीक कह रहे हो, सबने प्रतिज्ञा की है ?

द्वितीय—हाँ, सबने।

प्रथम—बराबर देखता आ रहा हूँ, तुम चौधरी लोग पीछेसे चिल्लाकर कहते हो, वाह-वाह ; और सामनेसे सरपर लट्ठ पड़ते रहते हैं हमारे ही सरपर। ठीक कह रहे हो न, मालगुजारी कुमार-महाराजको ही दोगे न, बादमें कोई पीछे कदम तो नहीं रखेगा ?

तृतीय—कोई नहीं, कोई नहीं। आज महाराजके पाँव छूकर शपथ लेंगे हम-सब।

प्रथम—यह अच्छी बात है। मार तो तकदीरमें लिखी ही हुई है। अकेले खाते हैं तो दु ख होता है। देश-भर अगर मारकी पंगतमें बैठ जाय तो उनके साथ पत्तल लेकर बैठनेमें फिर कोई डर नहीं।

द्वितीय—तो यही तय रहा ?

प्रथम—हाँ, रहा।

तृतीय—पीछे तो नहीं हटोगे ?

प्रथम—पीछे हटनेका रास्ता तुम्हीं लोग खुला रखते हो, हमें वह ढूंढे ही नहीं मिलता।

तृतीय—अरे भोंदू, हम नहीं मर सकते सो बात नहीं, लेकिन जरा सोचो तो सही, हमारे मरनेके बाद तुमलोगोंकी क्या दशा होगी !

प्रथम—हमारी अन्त्येष्टि-क्रिया बन्द रहेगी, और क्या !

कुछ स्त्रियोंका प्रवेश

प्रथमा—राजाके अभिषेकका समय हुआ ?

द्वितीय—नहीं, अभी देर है। तुमलोग तैयार हो न ?

प्रथमा—हमारे लिए मत सोचो जी, निश्चिन्त रहो। तुम मर्दोंमें ही हमेशा यह देखा जाता है कि कोई आगे बढता है तो कोई पीछे झाँकता है। कोई कहता है, 'वक्त देखकर काम करना चाहिए', तो कोई कहता है, 'काम देखकर वक्त सम्हालना चाहिए।' बीचमेंसे वक्त निकल जाता है हाथसे।

द्वितीया—मै तो अभी देखके आ रही हूँ, तुम्हारे न्यायवागीशजी बैठे बहस कर रहे हैं कि 'जो राजा हैं वे सिंहासनपर बैठते हैं या जो सिंहासनपर बैठते हैं वे ही राजा हैं।' इसी बातपर दो पक्षोंमें सिर-फुटौवल हो रहा है हमारे मुहल्लेमें। औरतोंने कल रात-भर जागके सजाये हैं मंगल-डाले।

तृतीया—पौ फटते ही सब निकल पड़ीं घरसे।

प्रथम—अब ज्यादा न शरमिन्दा करो हमें। इस बातको हम माने लेते हैं कि नारियोंके समान पुरुष नहीं मिलते। तुमलोगोंमें गीत गानेवाली भी तो होंगी ?

द्वितीया—क्यों नही, - आ रही है पीछे-पीछे।

द्वितीय—और तुम्हारे अमीरचन्दकी लड़की ?

तृतीया—वही तो ला रही है सबको।

द्वितीय—नन्दगाँवके कपिल लड़की है वह। उस दिन वितस्ताके घाटपर हमारे यहाँके करमचन्द पहुँचे थे उसे दो-चार मीठी बात सुनाने। कंकणकी एक करारी चोट पड़ते ही जबान बन्द हो गई हजरतकी !

प्रथमा—तुम्हें नहीं मालूम क्या, उसने कहा है, वेत्रवती नाम रखेगी वह अपना,-कुमार-महाराजके सिंहासनके पीछे रहा करेगी, उनकी परिचारिका होकर।

प्रथम—भाई साहब, तब तो मै भेड़ चरानेका रोजगार छोड़कर राजाका छत्रधर बनूँगा।

द्वितीय—अरे वाह रे बुद्धू, अभी कुछ देर पहले तो तुझे दुविधामें देखा था, अब एक ही क्षणमें राज-भक्ति ऐसी भरपूर कैसे हो उठी ?

प्रथम—एक आगसे ही तो दूसरी आग जलती है।

तृतीय—तू तो भेड़ चराने गया था, बता, उत्तरखण्डकी कोई खबर भी लाया है ?

प्रथम—किसीसे अगर न कहो तो कहूँ।

तृतीय—डर किस बातका ! कह दे, कह दे।

प्रथम—कहनेसे कोई विश्वास न करेगा,—स्वयं रानी सुमित्राको देखा है मैंने, भैरवीके वेशमें चली जा रही थीं ध्रुवतीर्थकी ओर।

द्वितीय—पागल तो नहीं हो गया !

प्रथमा—पागल क्यों होने लगे जी,—ठीक तो कह रहे हैं ये। मैंने भी सुनी है यह बात। किसीसे कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ी मुझे।

तृतीय—किससे सुना तुमने ?

प्रथमा—मेरी एक जेठौत है मन्दाकिनी, वो तीर्थ करके लौट रही थी। रास्तेमें भेंट हो गई। उससे सुना कि राजकुमारी आई हैं मार्तण्डदेवकी उपासिकाकी दीक्षा लेने।

द्वितीय—विश्वास कैसे करूं ! बुद्धू, तेरे साथ कोई बात हुई थी उनकी ?

प्रथम—मैंने प्रणाम करके कहा कि तुम राजकुमारी सुमित्रा हो हमारी। उन्होंने कहा, 'मेरा नाम है तपती।' मैंने कहा, 'देवी, चरण-सेवक होकर चलूं साथमें ?' उन्होंने तर्जनी उठाकर आदेश दिया, 'नहीं, लौट जाओ।' मुंहसे कुछ नहीं कहा।

तृतीय—दुर्गम तीर्थमें राजकुमारी अकेली जा रही हैं, और तैंने यहाँ आकर राज-महलमें खबर तक नहीं दी ?

प्रथम—दो-एक आदमीको कहने गया था, तो पिटते-पिटते बच गया। वे बोले, 'नशा किया है इसने !'

और-एक आदमीका प्रवेश

चतुर्थ—किसी भी तरह राजी नहीं हुआ।

द्वितीय—किसकी बात कर रहे हो ?

चतुर्थ—अपने सभा-कविकी। काका-महाराजका आश्रय छोड़नेका साहस ही नहीं हुआ उसे। आज अभिषेकमें एक सभा-कवि तो चाहिए ही।

तृतीय—जरूर चाहिए। आज-भरके लिए प्रथाकी रक्षा करके फिर संक्षेपमें विदा कर देनेसे काम चल जायगा।

चतुर्थ—एकको जुटाया तो है। मन्नू ला रहा है उसे। परदेसी है कोई, ध्रुवतीर्थ जा रहा है, साथमें एक नारी है।

तृतीय—बस इसीसे समझ लिया कि वह कवि है ?

चतुर्थ—देखा कि पेड़के नीचे एक रमणी बैठी गा रही है, और वह बजा रहा है एकतारा। चेहरा देखते ही मै ताड़ गया कि इससे अपना काम चल सकता है। सीधा जाकर बोला, 'तुम कवि हो, चलो राजाके अभिषेकमें।' पहले तो राजी ही नहीं हुआ। बादमें जब उस स्त्रीने कहा कि 'हाँ, ये कवि है, इन्हें अभिषेकमें जाना ही पड़ेगा', तो चटसे वह राजी हो गया। फिर 'ना' कहनेकी उसकी हिम्मत ही नही पड़ी।

तृतीय—'ना' करने लायक वह नारी जो नहीं, 'ना' करता कैसे!

चतुर्थ—ठीक कह रहे हो तुम। देखा, बिलकुल वशमें कर रखा है उसने। वह अगर कहती कि 'चलो, लड़ाई करने', तो उसी वक्त उठके भागता वह लड़ाई करने, कविता बनाना तो मामूली बात है।

द्वितीय—बस, समझ गया मैं, जरूर वह कवि है। याद है अपने धरणीदासकी। गौरी-तराईकी नयनी दुशाला बुना करती थी, धरणीदास आहिस्तेसे जा खड़ा होता था उसके आँगनके एक कोनेमें। नयनी जब अपने कुण्डल हिलाकर झनकार उठती थी तो धरणी चटसे कविता बनाने लगता था। खेतूलाल, तुमने ठीक ही ताड़ा है, वह जरूर कवि है।

चतुर्थ—हो या न हो, चेहरा देखकर तो लोग यही समझेंगे कि कवि है। लो, वे इधर ही आ रहे हैं।

मन्नूके साथ नरेश और विपाशाका प्रवेश

विपाशा (नरेशसे)—कवि नरोत्तम, इन्हें वंचित न करो। तुम्हें गानेको

कहूं, इतनी हिम्मत नहीं मुझमें। लेकिन, मै तो तुम्हारी ही शिष्या हूं, यथासमय मुझे आज्ञा देना, मै गाऊंगी।

नरेश—तुम्हारी भक्तिसे मै प्रसन्न हू। मैं आज्ञा देता हूं, गाओ तुम।

विपाशा—अभी गाऊं! अभी तो समय नही हुआ।

नरेश—इतने दिन मेरे पास रहीं, फिर भी इतनी शिक्षा तुम्हें नही मिली कि गानेके लिए कभी असमय होता ही नही?

प्रथम—कवि ठीक ही कह रहे हैं। देखो न, आदमी इकट्ठे हो रहे हैं। समय हो रहा है।

विपाशा— गीत

क्या-जाने क्या आज हो गया, जाग उठे है सोते प्राण,
आज दूरसे सुन पड़ता है महासिन्धु-आवाहन-गान।
किसने घेरा आज हमें रे,
कैसा कारागार अरे रे!
तोड़ तोड़ रे कारा, तू अब, आघातोंपर कर आघात,
अरे, विहंगोंने क्या गाया, आया रवि-कर आज प्रभात।
गिन-गिन पग-ध्वनि रात बिताई,
अरुण प्रकाश न दिया दिखाई,
मिटा अँधेरा इतने दिनपर, सुप्रभातका गाओ गान,
आज हुआ मार्तण्ड उदय है, जाग उठे हैं सोते प्राण।

प्रथम—हाय हाय, क्या गान गाया है आज! सच्चा कवि है, क्या सूझ है वक्तकी। सुनो जी, इसे छोड़ना नही, नहीं तो पछताना पड़ेगा। मै अपने दादा-ससुरके घर इसके रहनेका बन्दोबस्त कर दूंगा।

द्वितीय—कवि, खूब रची है कविता! है तो तुम्हारी ही न? इसमे नाम तो नही आया तुम्हारा? हमारे वंशीलाल तो बगैर नामके एक दोहा तक नही कहते।

नरेश—नामसे मुझे क्या काम? मै तो कहता हूं, गीत उसीका है जो

गाता है। गीत मेरा है या तुम्हारा, इस फालतू सवालको जो गीत बिलकुल भुला नहीं देता वह गीत ही नहीं।

तृतीय—लेकिन मुझे ऐसा लगता है, कवि, कि इस गीतको मैंने पहले भी सुना है कभी, यहीं काश्मीरमें।

नरेश—बड़ी खुशी हुई मुझे तुम्हारी बात सुनकर। तुम रसिक आदमी हो,– अच्छा गीत सुनते ही ऐसा मालूम होता है कि पहले भी कभी सुना है।

तृतीय—मालूम होता है हमारे कवि शशांकने भी ऐसा एक—

नरेश—इसमें कोई असम्भव बात नहीं, कोई-कोई कवि ऐसे भी होते हैं जिनकी रचना दूसरे कविकी रचनासे ठीक मिल जाती है।

तृतीय—कवि, जी चाहता है तुम्हें एक माला पहना दू।

नरेश—माला मै नहीं लेता। मेरे गीत जिसके कण्ठमें हैं, मेरी माला भी उसीके कण्ठमें पड़ती है।

तृतीय—यह तो और भी अच्छी बात है। इनका कण्ठ माला पहनने लायक़ ही है। (स्त्रियोंसे) सुनती हो, तुम्हारी डालियोंमें माला तो बहुत है, एक दो न मुझे, इन्हें पहना दूं।

प्रथमा—हूं-हूं, अभी देती हूं। माला दे दो इन्हें। कहनेमें कुछ लगता थोड़े ही है।

चतुर्थ—देनेमें दोष क्या है ?

द्वितीया—तुम्हें दोष क्यों दिखाई देने लगा! गली-गली माला पहनाते फिरना तो तुमलोगोंका स्वभाव पड़ गया है।

तृतीय—मौसी, नाराज क्यों होती हो ?

द्वितीया—बस रहने दो, अब 'मौसी' 'मौसी' करनेकी जरूरत नहीं।

तृतीय—अच्छा, 'मौसी' नहीं कहूंगा ; जिससे खुश होगी वही कहूंगा। अब तो दे दो एक माला।

तृतीया—तुमलोगोंमें हया-शरम क्या बिलकुल रही ही नहीं! कहांकी कौन है, जिसका ठीक नहीं, – राजाके अभिषेककी माला दे दूं उसे! इतनी सस्ती नहीं हैं हामरी माला।

प्रथम—ऐसी बात न कहो, दादी-सास, अभी यहाँ राजा होते तो वे खुद पहना देते इन्हें माला।

द्वितीया—भरततलीके लोग हैं कैसे! तुमलोगोंका बरताव तो अच्छा नहीं। इससे तुमने दादी-सास कैसे कहा? यह मेरी भतीजी लगती है।

प्रथम—मौसी कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ी। सोचा कि दादा-ससुरके गाँवमें रहती है, उस नातेसे दादी-सास कहनेमें कोई हर्ज नहीं।

प्रथमा—चुप रहो। देखो, राजा आ रहे हैं खेमेमेंसे निकलकर। अभी तो समय नहीं हुआ,– तुमलोगोंने गीत गाकर उन्हें बाहर बुला लिया।

सबके सब—जय, महाराज कुमारसेनकी जय!

कुमारसेनका प्रवेश

कुमारसेन—जल्दी घोड़ा तैयार कराओ मेरा।

तृतीय—कवि, शुरू करो, अपना गान शुरू करो जल्दी।

विपाशा— **गीत**

अपने सूने सिंहासनको, हे वीर, आज परिपूर्ण करो।
व्याकुल है धरणी क्रन्दनसे,
करो मुक्त सबको बन्धनसे,
आज प्रातमें खड्ग हाथमें लेकर दुखियोंके दुःख हरो।
धर्म रहेगा सदा साथमें, मद अहंकारका चूर्ण करो,
अपने सूने सिंहासनको, हे वीर, आज परिपूर्ण करो।

कुमारसेन (विपाशाको इशारेसे बुलाकर)—अचानक आज तुम यहाँ कैसे चली आई?

विपाशा—छुट्टी मिल गई, युवराज!

कुमारसेन—सुमित्रा?

विपाशा—उस बन्दिनीको भी मुक्ति मिल गई।

कुमारसेन—मृत्यु?

विपाशा—नहीं, नये प्राण।

कुमारसेन—अर्थ नहीं समझा ।

विपाशा—जालन्धर छोड़ आई हैं वे । गई हैं ध्रुवतीर्थ,– उपासिकाकी दीक्षा लेंगी ।

कुमारसेन—तुम्हारी बातको मै अब भी मनसे ग्रहण नहीं कर पाया ।

विपाशा—युवराज, सुमित्राको तो तुम पहचानते हो । सूर्यकी तपस्याको उस ज्योतिर्मयीके सिवा भला और कौन ग्रहण कर सकता है आजके दिन ? आलोककी जो दूती हैं, भोगके भण्डारमें उनके बन्धनको रुद्रदेव सहन नहीं कर सकते ।

कुमारसेन—और जालन्धर-पति शायद जंजीर हाथमें लिये-हुए पीछे-पीछे दौड़े आ रहे हैं ?

विपाशा—हाँ, पर, मिट्टीके बाँधसे नदीको बाँधकर उसके स्रोतको राज-भण्डारमें जमा करनेके लिए । उनकी बात पूछनी हो तो उनसे पूछो, वे मेरे पथके साथी है ।

कुमारसेन—तुम्हारे पथके साथी ?

विपाशा—हाँ, युवराज, मेरे पथके साथी । चुप क्यों हो रहे ? इससे समझ रही हूं, तुम समझ गये हो । इसपर और-कोई बात नहीं चल सकती ।

कुमारसेन—इतने दिन बाद तुमने बन्धन स्वीकार कर लिया, विपाशा !

विपाशा—विपाशा सिन्धुनदमें जा मिली है, यह मुक्तधाराका मिलन है, कुमार !

कुमारसेन—इनका नाम तो बताओ ?

विपाशा—नरेश । राजा विक्रमके सौतेले भाई हैं । मै उन्हें बुलाये लाती हूं ।

कुमारसेन—नमस्कार, राजकुमार ।

नरेश—नमस्कार ।

कुमारसेन—तुम जैसे अतिथिको पाकर आजका दिन मेरा सार्थक हुआ ।

नरेश—मै अपनी महारानीका अनुवर्ती हूँ, कुमार, तीर्थयात्री हूं, पथका

अतिथि। तुम्हारे द्वारपर आज जो अतिथि अनाहूत आये है, उनका संवाद मिला ? प्रस्तुत हो न ?

कुमारसेन—अभी-अभी खबर मिली है। तैयारियाँ कुछ भी नहीं, फिर भी स्वागत तो करना ही होगा। अकस्मात् मेरे साथ युद्ध करनेका कारण क्या हुआ, अब तक मेरी कुछ समझमें नहीं आ रहा !

नरेश—कारणकी जरूरत नहीं पड़ती। अन्धा विद्वेष और अन्धी ईर्षा बाहर रहकर रास्ता नहीं ढूंढ़ती, स्वभावके भीतर ही उनका आश्रय है। तुम्हारी मार्यादा उनसे सहन नहीं होती, इसीकी अहेतुक उत्तेजना है उनकी दीनतामें,– यह तो विधाताका अभिशाप है। उसपर वे मन-ही-मन सन्देह करते हैं, महारानी सुमित्राको तुम्हारी तरफसे प्रश्रय मिला है, या वे तुम्हारा प्रश्रय पानेके लिए यहाँ आई हैं !

कुमारसेन—इतने दिन हो गये, अब तक वे समझ न सके कि सुमित्राके लिए यह असम्भव है !

नरेश—समझनेकी शक्ति ही अगर होती तो उनके आगे खोनेका यह दुर्भाग्य ही क्यों आता !

ब्राह्मणोंका प्रवेश

पुरोहित—महाराज, अभिषेकका कार्य अभी-तुरत आरम्भ कर देना उचित है। विलम्ब करनेसे विघ्न हो सकता है। नानाप्रकारकी बातें सुननेमें आ रही हैं।

कुमारसेन—अभिषेकका कार्य संक्षिप्त करो। विलम्ब करनेसे काम नहीं चलेगा।

पुरोहित—तो चलो, महाराज, उस अश्वस्थ-वेदिकापर। सब जयध्वनि करो।

तुरही भेरी और शंख बज उठते हैं

सबके सब—जय महाराजाधिराज काश्मीराधिपतिकी जय !

कुमारसेन—बाहर यह कोलाहाल कैसा ?

अनुचरोंका प्रवेश

अनुचर—सहसा काका-महाराज आ पहुँचे हैं। प्रहरीगण कहते हैं, प्राण रहते वे उन्हें यहाँ प्रवेश नहीं करने देंगे। लड़कर वे प्राण देनेको तैयार हैं। आदेश दो, महाराज !

कुमारसेन—शान्त करो प्रहरियोंको। काका-महाराजको आदरके साथ ले आओ। [अनुचरोंका प्रस्थान

विपाशा—तो हमें यहाँसे जाना चाहिए।

[नरेश और विपाशाका प्रस्थान

चन्द्रसेनका प्रवेश

एक दल—कहाँ जा रहे हो, चन्द्रसेन ! पाखण्डी ! कपटाचारी ! कहाँ जा रहे हो विश्वासघातक ! कैद कर लो इन्हें।

कुमारसेन—ठहरो, ठहरो तुमलोग। यह कैसी बुद्धि हो गई तुम्हारी ! ये विश्वास करके आये हैं मेरे पास।

चन्द्रसेन—कोई डर नहीं, वत्स, केवल विश्वासपर भरोसा करके ही नहीं आया। इनलोगोंको अगर अपघात-मृत्युकी इच्छा हुई हो तो मै इन्हें निराश नहीं करूँगा।

कुमारसेन—प्रणाम काका-महाराज। मेरा अभिषेक-मुहूर्त आज तुम्हारे समागमसे सार्थक हुआ है। आशीर्वाद दो मुझे।

चन्द्रसेन—सो पीछे दूंगा। अभी जरा भी समय नहीं। क्यों आया हूं, सुनो। सहसा जालन्धर-राज सेना लेकर काश्मीर आ पहुँचे हैं।

कुमारसेन—सुन लिया है यह संवाद। अभिषेकका कार्य शीघ्र सम्पन्न किया जायगा।

चन्द्रसेन—अभिषेक अभी रहने दो। पहले चलो उनके पास आत्म-समर्पण करने।

कुमारसेन—आत्म-समर्पण ! युद्ध नहीं ?

चन्द्रसेन—सेना कहाँ है तुम्हारे पास ?

कुमारसेन—क्यों ? राजधानीमें सेनाका क्या अभाव है ?

चन्द्रसेन—वह तो अभी तुम्हारी नहीं है ।

कुमारसेन—किन्तु काश्मीरकी तो है ।

चन्द्रसेन—विक्रम तो काश्मीर नहीं चाहते, तुम्हीको चाहते है ।

कुमारसेन—मेरा मान-अपमान क्या काश्मीरका नहीं ?

चन्द्रसेन—क्या कहते हो तुम! यह तो मामूली घरका झगड़ा है। सुनो मेरी बात, चलो उनके पास, उनसे क्षमा माँगो, उनका स्नेह लो, हँसी-खुशीसे सब-कुछ निबट जायगा ।

कुमारसेन—काका-महाराज, बहस करनेका समय नहीं अब, आखिरी बार पूछता हूँ मै, क्या राजधानीसे सेना नहीं मिलेगी मुझे ?

चन्द्रसेन—राजधानी ! व्यंग कर रहे हो मुझसे ? सुना है इस अखरोटके जंगलमें ही राजधानी है । अपना आदेश तुम यहींसे घोषित करना । मेरी कोई जरूरत नही । मै विदा होता हूं । [प्रस्थान

सबके सब—धिक् धिक् ! सत्यानास हो तुम्हारा ! कोटि जन्म नरकमें सड़ो तुम । सिंहासनके कीट, सिंहासनकी धूलके साथ तुम भी धूलमें मिल जाओ !

कुमारसेन—चुप रहो । सुनो सब । जालन्धर काश्मीर आक्रमणके लिए आया है, मुझे अकेले लड़ना पड़ेगा ।

सबके सब—महाराज, न्याय तुम्हारे पक्षमें है, धर्म तुम्हारे पक्षमें है, सम्पूर्ण काश्मीरका हृदय तुम्हारे पक्षमें है । जय महाराजा कुमारसेनकी जय ! धिक्कार है चन्द्रसेनको, सौ-सौ बार धिक्कार !

कुमारसेन—चुप रहो, उत्तेजनामें वृथा शक्तिक्षय न करो । जाओ अभी, सेना संग्रह करो जाकर ।

सबके सब—और अभिषेक ?

कुमारसेन—अभिषेक न हुआ तो क्या है !

सबके सब—सो नहीं होगा, महाराज, सो नहीं होगा । चन्द्रसेनका षड्यन्त्र अन्तमें सफल हो, यह हमलोगोंसे नहीं सहा जायगा । हमलोग

आपके साथ हैं, सेना-संग्रहका आयोजन करने अभी चले हम। किन्तु उत्सव चालू रहे, अनुष्ठान पूरा होना चाहिए।

कुमारसेन—डरो मत, मन्दिरमें देवताको साक्षी रखकर तीर्थोदकसे एक क्षणमें मेरा अभिषेक हो जायगा। युद्धसे अगर लौट आया तो उत्सव सम्पूर्ण होगा। पर, अब तुमलोग जाओ, देर न करो।

सबके सब—जय, महाराज कुमारसेनकी जय! धिक्कार चन्द्रसेनको! धिक्कार, धिक्कार, धिक्कार!

[सबका प्रस्थान

और-एक दलका प्रवेश

प्रथम—महाराज, अब समय नहीं है। भागना पड़ेगा।

कुमारसेन—क्यों?

प्रथम—जालन्धरकी सेना अन्ध मुनिके मैदान तक आ पहुँची है, अब भागनेके सिवा और-कोई चारा नहीं। चलो, शम्भूप्रस्थके जंगलका रास्ता मुझे मालूम है। [दोनोंका प्रस्थान

द्वितीय—अभी-अभी काका-महाराज आये थे न!

तृतीय—चालबाजी है, सब चालबाजी है! शत्रु-पक्षको उन्होंने खुद सब भेद बता दिया है।

द्वितीय—गाँव-गाँवमें आदमी गये हैं सेना-संग्रह करने। लेकिन समय कहाँ मिला! हाय-हाय, इनलोगोंने युद्ध भी नहीं करने दिया!

तृतीय—यह तो घेरकर मारना है, कुछ भी नहीं कर सकते हम, मरनेके सिवा और कोई रास्ता ही नहीं दिखाई देता। असह्य है।

द्वितीय—जालन्धरके पापी लोग इसीको कहते हैं युद्ध! यह तो हत्या करना है!

और-एक दलका प्रवेश

प्रथम—नागपत्तन जला दिया दुष्टोंने, भून दिया सबको!

द्वितीय—ऐं!

तृतीय—हाँ हाँ, वहाँके लोग आखिर तक चीखते रहे,– जय महाराज कुमारसेनकी जय !

द्वितीय—इसके पीछे हैं काका-महाराज। नागपत्तनने आखिर दम तक उन्हें माना ही नहीं-न, इसीसे वदला लिया है उन्होंने विदेशियोंके जरिये।

तृतीय—तब तो बहुत-से पत्तनोंको जलना पड़ेगा।

देवदत्तका प्रवेश

देवदत्त—सुनो सुनो, तुमलोगोंमें कुन्तीपुरका कोई है क्या ?

प्रथम—क्यों, क्या बात है ?

देवदत्त—चन्द्रसेनके साथ विक्रम महाराजकी सलाह हुई है, वहाँ सेना भेजी जायगी उपद्रव मचानेके लिए।

द्वितीय—आप कौन हैं साहब ? विदेशी-से मालूम हो रहे है !

देवदत्त—हाँ, हूँ तो विदेशी ही।

तृतीय—जालन्धरके आदमी हो ?

देवदत्त—ठीक पहचाना है तुमने।

प्रथम—तुम्हारे इतनी धर्मबुद्धि कैसे हुई ?

देवदत्त—विधाताकी आश्चर्य महिमा है। दैवसे ही होता है ऐसा। तुम्हारे काश्मीरमें चन्द्रसेन जिस वंशमें पैदा हुए हैं उस वंशमें भद्र पुरुष भी जन्म लेते हैं मालूम होता है।

द्वितीय—खूब कहा, महाराज, खूब कहा आपने ! आप ब्राह्मण हैं न ?

देवदत्त—हाँ, ब्राह्मण हूँ।

सबके सब—प्रणाम, प्रणाम।

द्वितीय—अपने राजाके विरुद्ध आप—

देवदत्त—इसे तुमलोग राजाके विरुद्ध किस बुद्धिसे बता रहे हो ! अपने राजाके पापको मै जितना रोक सकूँगा उतनी ही मेरी राजभक्ति सार्थक होगी।

तृतीय—लेकिन इसमें संकट भी कम नहीं, महाराज ! राजा अगर—

देवदत्त—राजाकी तरफसे आज जो अन्याय कर रहे हैं, संकटकी आशंका

मेरी अपेक्षा उनके लिए भी कम नहीं। अधर्म अगर हिम्मत कर सकता है तो धर्म क्या उसके आगे कायर साबित होगा ?

द्वितीय—बहुत बड़ी बात कह गये, महाराज, बहुत बड़ी बात कह गये ! दो, और-एक बार चरणोंकी धूल दो ।

देवदत्त—युवराज कुमारसेन यहाँसे निकल गये न ?

प्रथम—क्षमा करो, महाराज, यह हमसे नहीं होगा, युवराजके विषयमें तुमसे कोई बात हम नहीं कर सकते ।

देवदत्त—कहनेकी जरूरत नहीं, मै सिर्फ इतना ही जानना चाहता हूँ कि वे निरापद हैं तो ?

प्रथम—आपद-विपदकी बात कौन कह सकता है ! हाँ, हमारी तरफसे कोशिशमें कोई कसर नहीं ।

तृतीय—देखो देखो, पश्चिमके पहाड़की तरफ देखो ! मालूम होता है अचलेश्वरके पास आग लगा दी है उनलोगोंने । सारा जंगल जल उठा है । अकारण सर्वनाश करने क्यों आये ये लोग ! शेर भूख लगती है तो खाता है, सांप डरता है तो पीछा करता है, पर इनका तो निष्काम पाप है, अहेतुक हिंसा ! ये किस जातिके आदमी हैं, महाराज ?

देवदत्त—दैत्य हैं, दैत्य । देवताओंपर इनका विशुद्ध विद्वेष है । अरे उन्मत्त अन्धे पापी, तुम्हारा महापातक तुम्हें महापतनकी ओर लिये जा रहा है, आज कौन तुम्हें बचा सकता है ! धिक् तुम्हारे साथियोंको ।

[प्रस्थान

चरके साथ विक्रमका प्रवेश

विक्रम—क्या कहा ? पता नहीं चला ?

चर—नहीं, महाराज ।

विक्रम—तो फिर चन्द्रसेनने कैसे कहा कि यहीं कुमारका अभिषेक हो रहा था ? अभी देर भी तो नहीं हुई—

चर—अभी-अभी देखा कि उनका घोड़ा वापस लाया जा रहा है । वे

शम्भूप्रस्थके जंगलमें गये हैं मालूम होता है। वहाँ गुफाओंके रास्तेसे अदृश्य होना बहुत ही सहज है।

विक्रम—जो रास्ता जानते हैं उन्हें पकड़ लाओ।

चर—महाराज, मार डालनेपर भी वे नहीं बतायेंगे। वहाँ ढूँढने जायें इतना साहस भी किसीमें नहीं। वह भूतोंका जंगल है, सब डरते हैं उससे।

विक्रम—बुलाओ चन्द्रसेनको।

चन्द्रसेनका प्रवेश

विक्रम—कहाँ हैं कुमारसेन ?

चन्द्रसेन—प्रजाजनोंने मिलकर कहाँ उन्हें छिपा रखा है, पता लगाना असम्भव है।

विक्रम—आग लगा दो चारों तरफ, अपने आप निकल आयेंगे।

चन्द्रसेन—'कहाँ हैं' बगैर जाने आग लगाना हिंसाका लड़कपन होगा।

विक्रम—तुम जानते हो, छिपा रहे हो।

चन्द्रसेन—पापमें तो प्रवृत्त हुआ हूँ, उसपर मूढ़ताको भी शामिल कर लूँ, इतना बचपन मै नहीं करूँगा। छिपाकर अपनेको संकटमें मै क्यों डालूँगा ?

विक्रम—मै तुम्हारा विश्वास नहीं कर सकता।

चन्द्रसेन—सारा काश्मीर मुझे अभिशाप दे रहा है, अन्तमें आपके मुँहसे भी ऐसी बात सुननी पड़ेगी, ऐसी आशा मुझे नहीं थी।

विक्रम—तुम थोड़ी देर पहले यहाँ कुमारके पास आये थे, यह बात सच है या नहीं ?

चन्द्रसेन—मै उन्हें तुम्हारे पास आकर आत्म-समर्पण करनेकी सलाह देने आया था।

विक्रम—इसी बहाने तुम उन्हें मेरे आनेका संवाद दे गये हो। मुझे धोखा देकर तुम उन्हें सावधान कर गये हो।

चन्द्रसेन—मुझपर अविश्वास करनेकी गलती न करो, महाराज!

विक्रम—गलतीसे अविश्वास करना अच्छा, किन्तु विश्वास करके गलती करनेका अब समय नहीं रहा। सेनापतिको आदेश देता हूँ, तुम नजरबन्द रखे जाओगे, अन्त तक कुमार और सुमित्राका अगर पता न लगा, तो पशुकी तरह पिंजड़ेमें बन्द करके तुम्हें जालन्धर ले जाऊँगा, प्राणदण्ड देना भी तुम्हारे लिए सम्मान देना है।

दूसरे चरका प्रवेश

चर—महारानीका सन्धान मिल गया, महाराज।

विक्रम—बताओ, बताओ कहाँ है वे ?

चर—वे गई हैं मार्तण्डदेवके मन्दिरमें, ध्रुवतीर्थमें।

विक्रम—चलो, अभी चलो वहाँ, – इसी क्षण!

चन्द्रसेन—महाराज, काश्मीरके देवताके विरुद्ध स्पर्धा प्रकट न करो। देवालयमें जाकर मार्तण्डदेवकी उपासिकाका हरण करना धर्मसे नहीं सहा जायगा।

विक्रम—तुम्हारे मार्तण्डदेवने ही तो मेरी महिषीका हरण किया है। देवताकी चोरीको मै नहीं मान सकता।

चन्द्रसेन—यह क्या कह रहे हो, महाराज! डर नहीं तुम्हें ?

विक्रम—नहीं, कोई डर नहीं मुझे।

चन्द्रसेन—तो मुझे प्राणदण्ड दे दो। इस पापका दायित्व मै नहीं वहन कर सकता।

विक्रम—प्राणदण्ड दिया जायगा सब-कुछ हो चुकनेपर, अन्तमें। जब तक तुमसे कार्योद्धारकी आशा है तब तक नहीं। सेनापति—

सेनापतिका प्रवेश

सेनापति—क्या, महाराज ?

विक्रम—चलो, मार्तण्डदेवके मन्दिरकी ओर चलो।

सेनापति—वहाँका मार्ग अत्यन्त दुर्गम है, महाराज! सेना लेकर जाना असम्भव है।

विक्रम—असम्भवको सम्भव करना होगा। मन्दिरकी दुर्गमता चाहे लौकिक हो या अलौकिक, चाहे भौतिक हो या दैविक,—कुछ भी नहीं मानूंगा आज मैं। सुमित्राके लिए काश्मीरका आश्रय धूलमें मिला दूंगा मैं, मैंने प्रतिज्ञा की है।

चन्द्रसेन—देव-मन्दिर इहलोककी सीमामें नहीं है, महाराज, वह पार्थिव काश्मीरके बाहर है।

विक्रम—यह बात देवताके विषयमें हो सकती है, सुमित्राके विषयमें नहीं; वे इहलोककी सीमामें जब तक हैं तब तक मेरी ही हैं, तब तक वे देवताकी नहीं हो सकतीं। तब तक मेरे हाथसे उनका छुटकारा नहीं, और न उनके हाथसे मेरा ही छुटकारा है।

चन्द्रसेन—महाराज, मैं तुमसे उमरमें बड़ा हूं, मै तुम्हारे चरणोंमें मस्तक रखता हूं, मेरा सिर काट डालो, पर काश्मीरके देवताका अपमान न करो।

विक्रम—तुम्हारे मस्तकका क्या मूल्य है जिसके बदलेमें मेरा अपमान कम हो सके! मुझसे छल करके तुम्हें छुटकारा नहीं मिल सकता। सेनापति, उदयपुर घेर लो। जरूर कुमार यहीं-कहीं छिपे-हुए हैं, चन्द्रसेन इस बातको छिपा रहे हैं। उसके बाद चलेंगे ध्रुवतीर्थकी ओर। कन्दर्पका परिचय पहले ही पा चुका हूं, अब लेना है मार्तण्डदेवका परिचय। जो उत्सव जालन्धरके देव-मन्दिरमें आरम्भ किया था, काश्मीरके देव-मन्दिरमें उसकी समाप्ति होगी।

—

४

ध्रुवतीर्थ : मार्तण्डदेवका मन्दिर

विपाशा पुरोहित और मन्दिरके सेवकगण

सूर्योदयके समय वेद-मन्त्रमें स्तव

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः
दृशे विश्वाय सूर्यम् ।
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः
सूराय विश्वचक्षसे ॥

पद्मोंका अर्घ्य लिये-हुए सुमित्राका प्रवेश

विपाशा— **गीत**

जागो जागो
आलस-शयन-विलग्न ।
जागो जागो
तामस-गह्वर-विमग्न ।
धौत करो करुणा-अरुण वृष्टि
मम सुप्ति-जड़ित अस्पष्ट दृष्टि ;
जागो जागो
दुःख-भार-नत उद्योग-भग्न ।
ज्योति सम्पद, कर पूर्ण चित्त,
धनप्रलोभन - विनाशन वित्त,
जागो जागो
पुण्य-वसन धर लज्जित नग्न ।
जागो जागो, आलस-शयन-विलग्न ।

पुरोहित भार्गवका प्रवेश

भार्गव—मा !

सुमित्रा—क्या है, वत्स भार्गव ?

भार्गव—कुछ दिनोंसे इस दुर्गम तीर्थके पथपर नाना प्रकारके लोगोंका आना-जाना देख रहा हूं। वे पुण्यकामी नहीं मालूम होते—

सुमित्रा—इसमें कोई दोष नहीं, डरनेकी कोई बात नहीं।

भार्गव—मालूम होता है वे विदेशी हैं।

सुमित्रा—भगवान सूर्यका उदय-दिगन्त देश-देशमें सर्वत्र है। उनके देशमें विदेशी कौन है ?

भार्गव—अपराध न लेना, देवी, हमलोगोंने कुछ दिनोंसे विदेशियोंके लिए यहांका मार्ग बन्द कर रखा है।

सुमित्रा—तब तो मेरे लिए भी यहांका मार्ग बन्द हो गया।

भार्गव—क्षमा करो, देवी! संकटसे हम तुम्हारी रक्षा करेंगे, ऐसी चिन्ता करना भी हमारे लिए स्पर्धा है, यह मोह है हमलोगोंका। दुर्बल-बुद्धिका अपराध न लेना, यात्रियोंके लिए कोई बाधा नहीं होगी।

शिखरिणीका प्रवेश

शिखरिणी—मा तपती !

सुमित्रा—क्या है शिखरिणी, तुम यहां कैसे ?

शिखरिणी—मेरे पतिको उनलोगोंने मार डाला।

सुमित्रा—यह कैसी बात ! वे तो साधु-पुरुष थे, उन्हें क्यों मारा ?

शिखरिणी—युवराज कहां हैं इस बातका पता लगानेके लिए उन लोगोंने उन्हें बडे-बडे कष्ट दिये, अन्तमें मार ही डाला। सत्यवादी होनेसे ही उनकी यह दशा हुई। देवी, मुझे किसी भी तरह सान्त्वना नहीं मिल रही है, मुझे समझा दो, संसारमें जो धर्म-रक्षाके लिए प्राणोंकी बाजी लगा देते हैं, धर्म उन्हींको क्यों इतना दु:ख देकर मारता है ?

सुमित्रा—जो महापुरुष मर सके हैं वे ही इस बातका तत्त्व जानते हैं। मृत्युसे जो लोग सत्यको पाते हैं उनके लिए शोक न करो।

शिखरिणी—शोक नहीं करूँगी, मा, वे मेरा मृत्यु-भय जड़से मिटा गये हैं। गाँवके लोग मुझे कह रहे हैं अभागिन! क्या समझेंगे वे! वे मेरे पति थे यही मेरा परम सौभाग्य है।

सुमित्रा—जिन लोगोंने उन्हें मारा है, अपनी मृत्युसे उनको उन्होंने जीत लिया है – इस बातको वे कभी भी नहीं समझेंगे, यही सबसे बढ़कर शोककी बात है। किन्तु, वत्से, तुम यहाँ क्यों आई हो?

शिखरिणी—यहाँ तुम्हारे चरण-तले यदि आश्रय ले सकती तो मै जी जाती। किन्तु, मा, घरका दीप बुझ जानेपर भी घर रह जाता है। मेरे एक लड़की है, अपने ऐसे पिताकी गोद उसने खो दी है, उसके कल्याणके लिए ही इस अन्ध-कारागारमें मुझे रहना पड़ेगा। उसीके लिए तुम्हारे पास आई हूँ।

सुमित्रा—बताओ मुझे क्या करना होगा?

शिखरिणी—अपने ये अलंकार लाई हूँ मै देव-मन्दिरमें सुरक्षित रखनेके लिए। अपनी मासे मिले थे ये मुझे, अपनी कन्याके लिए छोड़ जाऊँगी। जिस परिवारपर चन्द्रसेनका विद्वेष है, जालन्धरकी सेनाके हाथ वे उनका सर्वस्व लुटवाते चले जा रहे हैं। यह लो, मा, तुम्हारा स्पर्श प्राप्त करें ये,– मेरी कन्याकी देह पवित्र हो जायगी इनसे।

कुंजलालका प्रवेश

कुञ्जलाल—आज बाहर कहीं भी हमारे लिए दु खसे छुटकारा नहीं, देवी, किन्तु मन कहता है भीतर-ही-भीतर तुम उस दु खका नाश कर सकती हो, इसीसे आया हूँ तुम्हारे पास।

सुमित्रा—कहो वत्स, तुम क्या कहना चाहते हो?

कुञ्जलाल—जो नगर तुम्हारी मातामहीका जन्मस्थान है वह उदयपुर अब तक चन्द्रसेनको अस्वीकार करता-हुआ स्वतन्त्र था। वे जब-जब वहाँ

सेना लेकर उपद्रव करने पहुँचे हैं तब-तब वहाँकी प्रजा समस्त नगरको उजाड़ करके चली गई है। अबकी बार वहीं युवराजकी राजधानी स्थापित करके उनके अभिषेकका आयोजन किया जा रहा था, किन्तु बाधा पड़ गई। राजा विक्रमकी सेनाने अचानक उदयपुर घेर लिया है। प्रजाके लिए निकलनेका कोई रास्ता ही नहीं।

भार्गव—कुञ्जलाल, यह कैसी बुद्धि है तुम्हारी! कितना बड़ा दुःख दिया तुमने इन्हें, इसका भी कुछ होश है! क्यों ऐसे-ऐसे दु संवाद लाते हो इस शान्तितीर्थमें?

कुञ्जलाल—मा, इस तरह स्तब्ध होकर तुम आकाशकी ओर क्यों देख रही हो? चिन्ताकी कोई बात नहीं इसमें, मृत्युका मार्ग खुला हुआ है, कोई भी अपमान वहाँ तक नहीं पहुँचता। दो, मुझे, अपने हाथसे आज पूजाका निर्माल्य दो, ले जाऊँ मै उनके पास; और दो अपने हाथका एक लेख, एक आशीर्वाद, – उनका सब दु ख शुभ्र हो उठेगा।

[सबका प्रस्थान

नरेशका प्रवेश

नरेश—विपाशा, मुझे कैसा लग रहा है, कहूँ?

विपाशा—कहो।

नरेश—यहाँ आकर हमारा प्रेम परिपूर्ण हो उठा है। और एक आश्चर्यकी बात सुनोगी?

विपाशा—बताओ, सुनूँगी?

नरेश—आज मेरा मन तुम्हारा गान सुननेकी भी अपेक्षा नहीं करता, समस्त ध्वनियाँ यहाँ आलोक हो उठी हैं, – और, प्रत्यक्ष मेरे अन्तःकरणमें प्रवेश करता है। तुम क्या ऐसा अनुभव नहीं करतीं?

विपाशा—प्रियतम, तुम्हारे आनन्दसे आज मै आनन्दित हूं, इससे ज्यादा मैं कुछ कह नहीं सकती।

नरेश—आज आलोकमें मैंने तुम्हें देखा है आलोक-रूपमें, और उसके साथ अपनेको भी। अब कोई क्षोभ नहीं मेरे मनमें।

सुमित्राका प्रवेश

सुमित्रा—कुमार आये हैं, शीघ्र उन्हें बुला लाओ, विपाशा !

[नरेश और विपाशाका प्रस्थान

कुमारसेनका प्रवेश

कुमारसेन—राज्यका पथ अतिक्रम करके अन्तमें इस तीर्थमें ही आना पड़ा, बहन !

सुमित्रा—अन्यत्र तुम्हारी बहुत आवश्यकता है, कुमार ! कर्तव्य यदि शेष न हुए हों तो यहाँ क्यों आये ?

कुमारसेन—तुम्हारी रक्षा करनेके लिए ।

सुमित्रा—किसके हाथसे ?

कुमारसेन—विक्रम महाराजने ज्वालामुखी-देवीकी शपथ लेकर प्रतिज्ञा की है कि जैसे भी होगा वे तुम्हें यहाँसे ले ही जायेंगे । तीर्थके मार्गसे यहाँ सेना लाना असम्भव है, इसलिए उन्होने एक-एक करके चारों तरफ अपने चरोंका जाल-सा फैला दिया है ।

सुमित्रा—मुझे चाहते हैं वे ?

कुमारसेन—हाँ ।

सुमित्रा—और क्या चाहते हैं ?

कुमारसेन—और चाहते हैं मुझे ।

सुमित्रा—क्यों, तुमसे उनका क्या विरोध है ?

कुमारसेन—मेरे साथ विरोधका कोई स्पष्ट कारण अगर होता तो उस कारणको दूर करनेसे ही संकट टल जाता । किन्तु, मूल-कारण उनकी अन्ध प्रकृतिमें ही निहित है, इसीलिए वे इतने दुर्निवार, इतने भयंकर हो उठे हैं !

सुमित्रा—मै यदि जाऊँ तो क्या वे तुम्हें मुक्त कर देंगे ?

कुमारसेन—किन्तु तुम कैसे जा सकती हो उनके पास ? तुम जो देवताकी हो ! राज्यकी बात अब मैं नहीं सोचता, किन्तु काश्मीरके देवताका अपमान मै कदापि न होने दूंगा ।

सुमित्रा—क्या करोगे तुम ?

कुमारसेन—कुछ न कर सकूं तो मरूँगा ! पापको रोकनेके लिए कुछ भी न करना ही तो पाप है।

नेपथ्यसे—महारानी !

सुमित्रा—यह क्या, देवदत्त पण्डित यहाँ कैसे ?

देवदत्तका प्रवेश

देवदत्त—कई दिनोंसे तुम्हारे दर्शनोंकी कोशिश कर रहा था, मेरा चेहरा देखकर तुम्हारे अनुचरोंके मनमें ऐसा सशय बैठा कि उससे उनका पिण्ड छूटना मुश्किल हो गया। अशोक-वनमें हनुमानको देखकर राक्षसगण जैसे सन्दिग्ध हो गये थे, इनकी भी वही दशा हुई। आज अभी-अभी सहसा क्यों ये लोग प्रसन्न हो उठे, मालूम नहीं। छुटकारा पाते ही दौड़ आया हूँ। एक निवेदन है,- सुननी ही होगी तुम्हें मेरी बात।

सुमित्रा—कहो।

देवदत्त—अब असह्य हो उठा है, महारानी। गाँव-गाँव और नगर-नगरमें अग्निकाण्ड दुर्भिक्ष रक्तपात और नारी-निर्यातन चल रहा है। पापका नशा जालन्धरके समस्त सैनिकोंपर भूतकी तरह सवार हो गया है, उतरना ही नहीं चाहता,-उत्तरोत्तर अत्याचारकी मात्रा बढती ही जा रही है। मैंने महाराजको जाकर अभिशाप दिया था, कहा था, अहोरात्र मै यही यमराजसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि वे तुम्हें हटा लें यहाँसे। राजाने मुझे कैदमे डाल दिया था,-प्रहरियोंने दया करके छोड दिया है। आज महाराजको कोई निषेध नहीं कर सकता, और-कोई नहीं रोक भी सकता उन्हें एकमात्र तुम्हारे सिवा।

कुमारसेन—पण्डितजी महाराज, ऐसी बात तुम कैसे कह रहे हो कि सुमित्रा जायें उनके पास ? इस मन्दिरसे बाहर निकलनेका पथ उनके लिए सम्पूर्ण बन्द है। इससे तो स्वर्ग और मर्त्यमें सर्वत्र धिक्कारकी ही ध्वनि प्रतिध्वनित हो उठेगी !

देवदत्त—मै जानता हूँ, अत्यन्त कठिन समस्या है, और यह भी जानता हूँ कि राजा इस समय प्रकृतिस्थ नहीं हैं। फिर भी मैं कह रहा हूँ, देवी सुमित्रा, आज तुम समस्त मान-अपमान सुख-दु:खके अतीत हो,-तुम पवित्र हो, पाप तुम्हारे सामने कुण्ठित लज्जित हो जायगा, तुम इस वीभत्सतामें निर्विकार चित्तसे उतर सकती हो।

कुमारसेन—सुमित्राका क्या हो सकता है और क्या नहीं हो सकता, इस बातके सोचनेका आज समय नहीं रहा, – किन्तु सुमित्रा देवताका अपमान करके यहाँसे चली जायें, ऐसा मै कदापि नहीं होने दूंगा। देवताका धन हरण करके उसे मनुष्यके भण्डारमें ले जायगी हमारे वंशकी कन्या!

सुमित्रा—भाई कुमार, उन्हें यहाँ बुला लिया जायगा।

कुमारसेन—यहाँ? देवालयमें!

सुमित्रा—हाँ, आर्ये यहीं, नहीं तो उनकी मुक्ति किसी भी तरह नही हो सकती। मेरा यह अन्तिम कार्य है, उन्हें बचाना ही होगा, उनकी मोहकी ग्रन्थि छेदकर मै चली जाऊँगी।

देवदत्त—किन्तु यह बड़े संकटकी बात है महारानी! बहुत पाप किये हैं उन्होंने। अन्तमें दुराचारी यदि देवालयमें आकर देवताका असम्मान करे, पुण्यतीर्थमें यदि कलुष ले आये?

सुमित्रा—कोई डर नहीं, पण्डितजी, कोई डर नहीं। मेरे प्रभु, मेरे हिरण्यद्युति सकल संकट दग्ध कर देंगे, बिलकुल भस्म कर देंगे। रुद्रने मुझे ग्रहण किया है, उनके पाससे मुझे छीनकर ले जाय, इतनी शक्ति किसीमें नहीं। —कुमार, तुम्हारे साथ शंकर है?

कुमारसेन—हाँ, वहाँ प्राङ्गणमें खड़ा है न!

सुमित्रा—शंकर!

शंकर—कहो दीदी! क्या है देवी! मै उपस्थित हूँ। जिस दिन जालन्धरके दुष्ट तुम्हें यहाँसे छीन ले गये थे, उस दिन मरणसे भी ज्यादा दु:ख पाया है मैंने। आखिर काश्मीरकी कन्याको काश्मीरके देवता स्वयं उद्धार कर लाये, यह देखकर मेरा जन्म सार्थक हो गया।

सुमित्रा—तुम मेरे दूत होकर जाओ महाराज विक्रमके पास।

शंकर—अभी जाऊँगा। बताओ क्या कहना होगा?

नरेश—देवी, शंकरको नहीं, मुझे भेजो। राजा यदि अपमान करें तो वृद्धसे सहा नहीं जायगा।

सुमित्रा—नहीं राजकुमार, यही मेरी तरफसे उनका शेष आमन्त्रण है,– अपने चिर-बन्धुके सिवा और किसके हाथसे भेजूं? – शंकर, शिशुकालमें अपनी गोदमें एक दिन तुमने मुझे ग्रहण किया था। मृत्युके समय पिताने अपना शेष अभिवादन दिया था तुम्हींको। आज अपनी उसी सुमित्राकी वाणी लेकर तुम्हें जाना होगा, शायद अपमानके मुंहमें। शंकर, तुम शान्त होकर सहिष्णु होकर कहना महाराजसे, उनके साथ अपने सम्बन्धके चरम परिणामके लिए मन्दिरके देवताके चरण-प्रान्तमें सुमित्रा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। और सुनो, अपने परम स्नेहके धन कुमारसेनके लिए तुम चिन्ता न करना, मृत्युसे वे नहीं डरते। स्वयं विश्वबन्धु विश्वविचारक धर्मराज उनके सदा सहायक रहेंगे।

शंकर—दीदी, वृद्धकी एक बात मानो। मै जानता हूँ कि कुमारके पास सैन्य-सामन्त कुछ भी नहीं है, जानता हूँ कि चन्द्रसेन इनके विरुद्ध हैं; फिर भी जितने भी हम उनके सहचर मौजूद हैं, सबको लेकर उन्हें युद्धक्षेत्रमें ही जाना होगा। वहाँ उनकी जन्मभूमि उन्हें अपनी पुनीत गोदमें ग्रहण करेगी।

देवदत्त—देशका दुःख उससे और भी आलोड़ित हो उठेगा, शंकर! उन्मत्तकी मत्तताग्निमें अब ईंधन न डालो।

कुमारसेन—शंकर, जाओ तुम, महाराजको बुला लाओ। अतिथि हैं वे हमारे, अतिथिकी भाँति ही हम उनका सत्कार करेंगे।

शंकर—हे रुद्र, हे हिरण्यपाणि, आज तुम्हारी ज्योतिपर आवरण क्यों है? अपने सेवकोंकी लज्जा दूर करो। दीप्यमान तेजसे बाहर निकल आओ,– अपना अग्निकेतु उद्घाटित कर दो। नमस्कार है तुम्हें, बारम्बार नमस्कार है तुम्हें।

भार्गवका प्रवेश

भार्गव—महाराज विक्रम निकटमें ही हैं यहीं कहीं, ऐसा सुन रहा हूँ। आदेश करो मा, समस्त द्वार बन्द करवा दू।

सुमित्रा—खोल दो, खोल दो, समस्त द्वार खोल दो, आनेके द्वार और जानेके द्वार। जाओ जाओ, भार्गव, उन्हें आमन्त्रण-पूर्वक ले आओ यहाँ।

भार्गव—उनकी प्रतिज्ञा है, देवी, कि देवताके पाससे वे तुम्हें छीन ले जायेंगे! मै इस मन्दिरका पुरोहित हूं, अपना कर्तव्य तो मुझे पालन करना ही पड़ेगा।

सुमित्रा—तुम अपना कर्तव्य ही पालन करो। देवताका मार्ग न रोको। जिस पथसे राजाकी सेना आयेगी उसी पथसे मेरे देवता मुझे उद्धार करने आयेंगे। जाओ तुम, अभी जाओ, मन्दिरका सिंहद्वार खोल दो।

[भार्गवका प्रस्थान

देवदत्त—तो, शकर, तुम यहीं रहो, महारानीका दूत बनकर मै ही उन्हें आह्वान करके ले आऊँ। [प्रस्थान

शकर—दीदी, उस बार वे तुम्हें राज-प्रासादसे छीन ले गये थे, अबकी बार क्या देवताके मन्दिरसे तुम अपनेको छीन ले जाने दोगी? इसे भी क्या हम चुपचाप सह लें?

सुमित्रा—डरो मत, शकर। आज मुझे ले जानेका सामर्थ है किसमें!

शंकर—तो बताओ, तुम्हारा क्या संकल्प है?

सुमित्रा—रुद्रके समक्ष अपनेको मै बहुत दिन पहले ही उत्सर्ग कर चुकी हू। तब उसमें व्याघात उपस्थित हुआ। संसारने मुझे अशुचि कर दिया। अब तपस्या की है मैने, मेरा शरीर-मन शुद्ध हो गया है। आज मेरा बहुत दिनका वह सकल्प पूर्ण होगा। उनके परम तेजमें अपना तेज मिला दूँगी आज मै।

शंकर—मेरा मोह दूर हो, सुमित्रा, मेरा मोह दूर हो। मैं तुम्हें निवृत्त न करूँ, रुद्रसे मेरी यही कामना है। [प्रस्थान

सुमित्रा—विपाशा!

विपाशाका प्रवेश

विपाशा—आज्ञा करो देवी !

सुमित्रा—मेरी अग्निशय्या बहुत दिनसे प्रस्तुत है, तुमने देखा है मेरा बहुत दु:खका आयोजन। आज समय हो गया, आनन्द मनाओ, जलने दो अग्निशिखा ! विलम्ब न करो।

विपाशा—जो आदेश, देवी। [पैरोंके पास सिर रखकर पड़ जाती है]

सुमित्रा—उठो विपाशा, अब मै अपनी शेष पूजा आरम्भ करूँगी। अर्घ्य प्रस्तुत है न ?

विपाशा—है, देवी।

[सुमित्रा पद्मोंका अर्घ्य हाथमें लेती है]

विपाशा— गीत

शुभ्र नव शंख तव गगन है बजाता,
(आज) शुभ-जागरण-गीत गाता।
मम हृदय-कमल विकसित कर
हे तिमिर-हर नव सूर्य-कर !
हे अरुण-रुचि, हे परम-शुचि,
ग्रहण कर अर्घ्य मम, ग्रहण कर।
आज मम प्राण-मन अरुण गीत गाता,
अहो विश्व - त्राता !

सुमित्रा— अद्या देवा उदिता सूर्यस्य
निरंहस: पिपृता निरवद्यात्।
पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौ शान्ति:।
शान्ति शान्ति शान्ति ॥

शेष दृश्य

नेपथ्यसे चिताग्निका आभास आ रहा है

सब-कोई वेद-मन्त्र पढ़ते-हुए वेदीका प्रदक्षिण कर रहे हैं

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ॥
ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर ।
क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ॥
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठा ते नम उक्तिं विधेम ॥

नेपथ्यमें वाद्य बजते हैं

विक्रम देवदत्त और शंकरका प्रवेश

परिशिष्ट

मन्त्रोंका अनुवाद

१—कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने ।
नमस्त्ववार्यवीर्याय तस्मै मकरकेतवे ॥

कर्पूरके समान, दग्ध होनेपर भी जिनकी शक्ति प्रत्येक व्यक्तिको अनुभूत होती है, जिनके प्रभावको कोई निवारण नहीं कर सकता, उन मकरकेतुको नमस्कार । —सुभाषितरत्नभाण्डागार

२—उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ —ऋग्वेद, १.५०.१

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः
सूराय विश्वचक्षसे ॥ —ऋग्वेद, १.५०.२

विश्वको दिखाई दे इसलिए समस्त रश्मियाँ समस्त भूतके ज्ञाता उज्ज्वल सूर्यको ऊर्ध्वमें वहन करती हैं ।

विश्वद्रष्टा सूर्यको आते देख नक्षत्रगण रात्रिके साथ चोरकी तरह भाग रहे हैं ।

३—'अद्या देवा उदिता सूर्यस्य'—इत्यादि

आज सूर्यकी उदित उज्ज्वल किरणें पापसे और निन्दनीय कर्मसे उद्धार करके हमारा पालन करें । —ऋग्वेद, १.११५.६

पृथिवी-लोक शान्ति लावे । अन्तरीक्ष लोक शान्ति लावे । द्युलोक शान्ति लावे । —अथर्ववेद, १९.९.१४

४—'वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ॥'—इत्यादि

महावायुमें मेरा प्राणवायु और यह शरीर भस्ममें मिल जाय ।

ॐ, अपना कर्तव्य स्मरण करो, अपना कृतकार्य स्मरण करो ।

हे अग्नि, मुझे सुमार्गपर ले चलो । हे देव, तुम हमारे समस्त कार्य जानते हो, तुम हमारे समस्त कुटिल पापोंका विनाश करो । तुम्हें हम बारम्बार नमस्कार करते हैं । —ईशोपनिषद् १८

बैकुंठका पोथा

प्रहसन

■

पात्र

वैकुंठ	ग्रन्थ-रचयिता
अविनाश	वैकुंठका छोटा भाई
ईशान	वैकुंठका नौकर
केदार	अविनाशका सहपाठी
तीनकौडी	केदारका सहचर

—

वैकुंठका पोथा

•

पहला दृश्य

केदार और तीनकौड़ी

केदार—देख तीनकौड़ी, -अविनाश तो मेरा नाम सुनते ही बाँसों उछलने लगता है—

तीनकौड़ी—आदमी पहचानता है मालूम होता है, मुझ जैसा बेवकूफ नहीं वह ।

केदार—लेकिन, मैने प्रतिज्ञा की है कि अपनी सालीके साथ उसका ब्याह कराके इसी जगह रहूँगा । अब मुझसे इधर-उधर घूमा नहीं जाता—

तीनकौड़ी—लेकिन तुमसे तो कहीं एक जगह टिका जो नहीं जा सकता, भाई साहब ! तुम्हारे पैरोंमें चक्कर है, वही तुम्हें घुमा रहा है, और आखिर दम तक घुमाता रहेगा ।

केदार—अच्छा, तू ही बता, मैं आया था अविनाशके भाई बैकुण्ठको वश करने,-सो मेरी यहाँ क्या दशा हुई ! कौन जानता था कि बुड्ढा किताब लिखता है । यह देख, इतना बड़ा एक पोथा पढ़नेको दे गया है मुझे—

तीनकौड़ी—अरे बाप रे ! चूहेकी तरह चुराकर खानेको आये थे तुम, सो चूहेदानीमें फँस गये मालूम होता है !

केदार—पर, तू मेरा सारा बना-बनाया खेल चौपट कर देगा ।

तीनकौड़ी—इसकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी भाई सा'ब, - तुम अकेले ही चौपट कर सकते हो ।

केदार—मेरी बात सुन, ये सब काम जल्दबाजी करनेसे नहीं बनते । गणेशजीको सिद्धिदाता क्यों कहा है, जानता है, - वे मोटे आदमी ठहरे, खूब जमके बैठना जानते हैं, देखनेसे ऐसा नहीं लगता कि उन्हें किसीसे कोई गरज है—

तीनकौड़ी—लेकिन उनका चूहा—

केदार—फिर बकवास ? अभागा कोढ़िया कहींका,– जा भाग यहाँसे ।

तीनकौड़ी—आच्छा, जाता हूँ। पर मुझे यों ही मत छोड़ देना, भाई साहब ! वक्तपर इस अभागे कोढ़ियाका भी खयाल रखना ! [प्रस्थान

बैकुण्ठका प्रवेश

बैकुण्ठ—देख रहे हैं, केदार बाबू ?

केदार—जी हाँ, खूब ध्यानसे देख रहा हूँ। पर, मेरा खयाल है– क्या नाम उसका – किताबका नाम कुछ बड़ा हो गया है—

बैकुण्ठ—बड़ा होने दीजिये, किन्तु उससे पुस्तकका विषय साफ समझमें आ जाता है। देखिये न,– ‘प्राच्य और पाश्चात्य, प्राचीन और प्रचलित संगीत-शास्त्रकी आदिम उत्पत्ति और इतिहास तथा नवीन सार्वभौमिक स्वरलिपिका संक्षिप्त और सरल आदर्श प्रकरण।”–इसमें कोई बात छूटी नहीं।

केदार—सो तो नहीं छूटी। लेकिन, – क्या नाम उसका – माफ कीजियेगा, बैकुण्ठ बाबू, नाम तो कुछ छोड-छाडकर ही रखा जाता है। मगर लिखा आपने कमालका है ! पढते-पढते – जो-है-सो – शरीर रोमाञ्चित हो उठता है।

बैकुण्ठ—हा हा हा हा । रोमाञ्च ! आप मजाक कर रहे हैं ?

केदार—आपसे मजाक कर सकता हूँ भला !

बैकुण्ठ—है तो मजाकका ही विषय। यह मेरा एक पागलपन है। हा हा हा हा.। संगीतकी उत्पत्ति और इतिहास है,– खाक और धूल ! लाइये, दीजिये मेरी कापी। बूढे आदमीका मजाक न उड़ाइये।

केदार—मजाक ! क्या नाम उसका – मजाक क्या कोई दो-दो घंटे तक कर सकता है ! सोचिये जरा, मैं कबसे आपकी पोथी लेकर बैठा हूँ। तब तो – जो है सो – रामके वनवासको भी – क्या नाम उसका– कैकयीका मजाक कह सकते हैं !

बैकुण्ठ—हा हा हा हा । आप बात खूब करते हैं, कमाल करते हैं !

केदार—लेकिन, हँसीकी बात नहीं, वैकुण्ठ बाबू,—क्या नाम उसका—आपने कहीं-कहीं ऐसा लिखा है कि वास्तवमें रोमाच हो उठता है,—सो क्या नाम उसका—आपके मुँहपर ही कहता हूँ।

वैकुण्ठ—समझ गया, आप किस जगहकी बात कह रहे हैं, वहाँ लिखते समय मेरी ही आँखें भर आई थीं। अगर आपको ऐतराज न हो तो उस जगह जरा पढ़के सुना दूं?

केदार—ऐतराज! आप भी खूब हैं साहब! क्या नाम उसका—मै तो खुद आपसे अर्ज करनेवाला था। (स्वगत) सालीको पार करने तक, हे भगवान, मुझे धैर्य दो। फिर मेरा भी शुभ दिन आयेगा।

वैकुण्ठ—क्या कहा आपने?

केदार—कुछ नहीं, यों ही कह रहा था—क्या नाम उसका—साहित्यकी पकड़ कछुएकी पकड़ है, जहाँ भी एक बार दाँत गड़े नहीं कि फिर छुटकारा नहीं।

वैकुण्ठ—हा हा हा हा। कछुएकी पकड़! खूब कहा! आपकी बातें बड़ी गजबकी होती हैं।—हाँ, यह रहा,—लीजिये सुनिये।—"हे माता भारतभूमि, कोई समय था जब तुम प्रवीण वीर्यवान् पुरुषोंकी तपोभूमि थीं, तब राजाका राज्य भी तप था, कविका कवित्व भी तपका ही नामान्तर था। तापस जनक राज्य-शासन करते थे, तापस वाल्मीकि रामायण गाकर तपका ही प्रभाव विस्तार करते थे, तब सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण विद्या, संसारका समस्त कर्तव्य और जीवनका सम्पूर्ण आनन्द साधनाकी सामग्री थी। तब गृहस्थान भी आश्रम था, और अरण्याश्रम भी आश्रम था। आज जो कुलत्यागिनी संगीत-विद्या नाट्यशालाओंमें विदेशी वंशीके फटे कंठसे आर्तनाद कर रही है और प्रमोदालयोंमें जाकर सुरा-सरोवरमें पाँव फिसलकर डूब मरना चाहती है, उसी संगीत-विद्याने किसी दिन भारतभूमिके तपोबलसे मूर्तिमती होकर स्वर्गको स्वर्गीय कर दिया था, उसी संगीत-विद्याने साधकश्रेष्ठ नारदकी वीणा-तन्त्रीमेंसे शुभ्र-रश्मिराशिके समान विच्छुरित होकर वैकुण्ठाधिपतिके विगलित पाद-पद्मोंसे निकली-हुई पुण्य-निर्झरिणीको म्लान मर्त्यलोकमें प्रवाहित कर

दिया था। हे दुर्भागिनी भारतभूमि, आज तुम कृशकाय दीनप्राण रोग-जीर्ण शिशुओंकी क्रीड़ाभूमि हो रही हो, आज तुम्हारी यज्ञवेदीकी पुण्य मृत्तिका ले-लेकर अबोध मूर्खगण पुतलियाँ बना रहे हैं ; आज साधना भी नहीं, सिद्धि भी नहीं ; आज विद्याके आसनपर वाचालता, वीर्यके स्थानपर अहंकार, और तपस्याके स्थानपर चातुरी विराज रही है ! जो वज्र-वक्ष विपुल तरणी किसी दिन उत्ताल तरंगोंको भेदकर महासमुद्र पार करती थी, आज उस तरणीका कोई कर्णधारमें नहीं ! आज हम कुछ बालक मिलकर उसके कुछ जीर्ण काष्ठखण्ड लेकर पंकिल सरोवरमें क्रीड़ा कर रहे है ; और शिशु-सुलभ मोहसे अज्ञान-सुलभ अहंकारमें कल्पना कर रहे हैं कि काष्ठखंड ही सागर पार करनेवाली नाव है, हम ही वे आर्य हैं और हमारे गाँवका जीर्णपत्रोंसे कलुषित जलकुण्ड ही वह अतलस्पर्श साधना-समुद्र है !"

ईशानका प्रवेश

ईशान—बाबू सा'ब, खाना आ गया।

वैकुण्ठ—कह दे, जरा बैठेगा।

ईशान—बैठनेकी किससे कहू ? खाना आया है।

केदार—तो अब उठा जाय ? क्या नाम उसका – स्वार्थी बनकर मैंने आपको बहुत देर तक बिठा रखा—

वैकुण्ठ—क्यों, आप उठ क्यों रहे हैं ?

ईशान—नहीं तो, – उनके उठनेकी जरूरत क्या है ! रात-भर बैठे-बैठे तुम्हारा पोथा सुनते रहें ! (केदारके प्रति) जाओ तो बाबू सा'ब, आप घर जाओ। हमारे बाबूका अब ज्यादा माथा गरम न कराओ। [प्रस्थान

केदार—ये आपके कौन होते हैं ?

वैकुण्ठ—नौकर है, इसना।

केदार—अच्छा, – क्या नाम उसका – बातें तो इसकी बड़ी साफ-साफ होती हैं !

वैकुण्ठ—हा हा हा हा.। ठीक कह रहे हैं आप। सो, उसका कुछ खयाल न करें, बहुत दिनसे है न, – मुझे कुछ मानता-वानता नहीं।

केदार—क्या नाम उसका – मुझसे तो थोड़ी देरकी जान-पहचान है, सो मुझे भी ज्यादा-कुछ मानता हो ऐसा तो नहीं मालूम होता। लेकिन, उसकी बात आपने ठीकसे सुनी नहीं,– आपका खाना आ गया है।

वैकुण्ठ—खैर जाने दीजिये, अभी ज्यादा रात नहीं हुई, – इस अध्यायको खतम कर दूं।

केदार—वैकुण्ठ बावू, खाना आपके घर आता है और आकर बैठा भी रहता है ; लेकिन – क्या नाम उसका – हमारे घर उसका व्यवहार कुछ और तरहसे होता है। देखिये, जब मै बचपनमें कालेजमें पढता था तब मैने – क्या नाम उसका – बहुत ऊँचे मचानपर ही आशाकी लता चढाई थी, और उसमें बड़े-बड़े कद्दू-जैसे डेढ-डेढ दो-दो हाथ लम्बे फल भी लगे थे, मगर – क्या नाम है सो – जडको पानी नहीं मिला, भीतर रस नहीं पहुचा, सो – क्या नाम उसका – भीतरसे सब पोलेके पोले ही रह गये। अब – जो है.सो – दिन-रात 'हाय पैसा' 'हाय अन्न' – यही एक धन्धा रह गया है। भीतरका सार जो कुछ था सो सूखकर – क्या नाम है सो – कॉंटा बन गया है।

वैकुण्ठ—अहा-हाहा। इससे बढकर दु ख तो और कुछ हो ही नहीं सकता। और मजा यह कि हरवक्त आपको प्रसन्न देखता हूं! सचमुच आप महानुभव व्यक्ति है। (केदारका हाथ पकड़कर) देखिये, मै अपनी क्षुद्रशक्तिसे अगर आपकी कुछ सेवा करने लायक होऊ, तो मुझसे साफ साफ कहिये, जरा भी संकोच—

केदार—क्षमा कीजियेगा, वैकुण्ठ बावू, – क्या नाम उसका – मुझे आप धनका लोभी न समझियेगा। आज आपने जो आनन्द दिया है, उसकी तुलना नहीं हो सकती, – उसके आगे धन-दौलत रुपया-पैसा – जो-है-सो—

तीनकौडीका प्रवेश

तीनकौड़ी (स्वगत)—खुश होकर दे रहे हैं, ले क्यों नहीं लेता—

केदार (स्वगत)—सब मिट्टी कर दिया, – नालायक गधा कहींका—

वैकुण्ठ—यह लड़का कौन है ?

केदार—कर्जके पीछे जैसे सूद लगा रहता है, यह मेरा वही है – क्या

नाम उसका। अपना ही बोझ नहीं सम्हाला जाता, उसपर – जो-है-सो – भगवानने यह बला और लाद दी!

तीनकौड़ी—बाबू साहब, ये है बैल और मै हूं इनकी पूंछ। जब ये घास चरते हैं तो मै मक्खियाँ उड़ाया करता हूं; और फिर जब किसानके हाथकी मार सहनी पड़ती है तब पूंछ-मरोड़नेकी ताकत हमपर ही आजमाई जाती है।

बैकुण्ठ—हा-हा हा हा! यह छोकड़ा तो आपको खूब मिला है! इसके तो आँख-नाक-कान सब बातें करते है। – सुनिये केदार-बाबू, काफी देर हो गई है, आज यहीं खा-पी लें तो अच्छा हो।

केदार—नहीं नहीं, इतना झंझट आप न उठाइये।

तीनकौड़ी—वाह जी वाह, झझट इसमें क्या है! शुभ काममें बाधा नहीं डालना चाहिए। खिलाने-पिलानेमें इन्हें मामूली-सी दिक्कत उठानी पड़ेगी, लेकिन बगैर खाये-पीये हमे पूरी मुसीबतका सामना करना पड़ेगा। सच्ची बात है, बाबू साहब, भूख बहुत जोरकी लगी है।

बैकुण्ठ—अच्छी बात है, भाई, आज तुम खूब पेट भरके खाओ। कोई तृप्तिके साथ खाता है तो उसे देखके मुझे बड़ा आनन्द होता है।

केदार—इस छोकड़ेको भगवानने – क्या नाम उसका – अन्तरिन्द्रियोंमें बस एक जठर ही दिया है सिर्फ। आपके इस आश्रममें आनेसे 'पेट' नामका जो एक गहरा गड्ढा है – क्या नाम उसका – उसकी बात मै बिलकुल भूल ही जाता हूं। ऐसा लगता है जैसे केवल एक हृत्पिण्डके ऊपर – क्या नाम उसका – एक मस्तक लिये बैठा हूं।

बैकुण्ठ—हा-हा हा हा! आप बहुत ही सुन्दर रसीली बातें करते हैं। वाह वाह, आपकी प्रतिभाकी तारीफ करनी पड़ेगी!

तीनकौड़ी—बातोंमें गरक होकर असल बातको न भूल जाइयेगा, बैकुण्ठ बाबू! भूख बड़े जोरकी लगी है।

बैकुण्ठ—अच्छा, अच्छा। कहाँ गया ईसनिया, – ईसनिया!

ईशानका प्रवेश

ईशान—एक थे, अब दो हो गये।

तीनकौड़ी—नाराज न होओ, भाई, तुम्हें भी हिस्सा दूंगा।

ईशान—अभी तक किताब सुनाई जा रही होगी ?

वैकुण्ठ (लज्जित होकर कापीको छिपाते हुए)—नहीं नहीं, किताब कहाँ है! देख इसनिया, क्या नाम उसका – एक काम कर – ये दो बाबू हैं न, समझा, इनके लिए खाना ले आ।

ईशान—खाना अब कहाँसे लाऊ ?

तीनकौड़ी—अरे बाप रे!

वैकुण्ठ—सुन तो सही, – भीतर जाकर नीरुसे कह आ कि—

ईशान—सो नहीं होगा, बाबू, अब मै उनसे जाकर चूल्हा सुलगानेको नहीं कह सकता। तुम्हारा खाना लिये वे अभी तक बैठी हुई हैं—

वैकुण्ठ—सो तो ठीक है, पर इन्हें बगैर खिलाये मै कैसे खा सकता हू! तू एक दफे उससे जाके कह तो सही, कहनेसे—

ईशान—सो तो मालूम है, कहते ही वे तुरत चूल्हा सुलगाना शुरू कर देंगी, लेकिन आज उनकी एकादशी है, क्यों उपासके दिन उनको तकलीफ देते हो, बाबू! (केदारके प्रति) बाबू, आजके दिन माफ कीजिये, घर जाकर आरामसे खाइये-पीजिये और सो जाइये।

तीनकौड़ी—भाई साहब, सलाह देना आसान बात है, लेकिन बगैर खानेके खाया कैसे जा सकता है, इस समस्याका समाधान करना आसान नहीं।

केदार—तीनकौड़ी, चुप रह तू। वैकुण्ठ बाबू, आप परेशान न होइये, क्या नाम उसका – आज रहने दीजिये—

वैकुण्ठ—देख इसना, तेरे मारे क्या मुझे घर-द्वार छोड़कर जंगलमें जाना पड़ेगा ? घरपर कभी कोई अतिथि आवें तो उन्हें जरा खाने-पीने भी नहीं देगा तू! नालायक कहींका। जा, जा यहाँसे, काला मुंह कर।

[ईशानका प्रस्थान

तीनकौड़ी—आप नाराज न होइये, बाबू साहब! मैने सोचा था कि

खिलाने-पिलानेमें आपको कोई दिक्कत न होगी, – लेकिन अव देखता हूं कि दिक्कत है। और फिर—

वैकुण्ठ—दिक्कत कुछ नहीं, आज एकादशी है न, निरुपमाका उपास है—

तीनकौड़ी—निरुपमा—

वैकुण्ठ—मेरी लड़की है, विधवा। आज उसका उपास होनेसे—

केदार—वैकुण्ठ वाबू, आज – क्या नाम है सो – आज्ञा दीजिये, फिर देखा जायगा।

तीनकौड़ी—ठहरो ठहरो, जा कहाँ रहे हो! – देखिये वैकुण्ठ वाबू, इसमें शर्मकी कोई वात नहीं, – अभागे तीनकौड़ियाका भाग्य ही ऐसा है कि अन्नपूर्णाके भण्डारमें भी पहुंच जाय तो वहाँ भी सफाया समझिये। खैर कोई वात नहीं, मेरे ऊपर भार दीजिये, मै बड़ावाजार जाकर पूड़ी-साग वगैरह लिये आता हूं। आप जरा भी परेशान न हों।

केदार (कृत्रिम क्रोधसे)—देख तीनकौड़ी, इतने दिन – जो है सो – तैने मेरी संगत की, पर – क्या नाम उसका – तेरा लालचीपन जरा भी नहीं गया। आजसे तेरा मै – जो है सो – मुँह नहीं देखना चाहता। [प्रस्थान

वैकुण्ठ—अजी, नहीं-नहीं, कोई वात नहीं, नाराज न होइये, केदार वावू, सुनिये, सुनिये!

तीनकौड़ी—अजी, आप चिन्ता न कीजिये। उन्हें मै अच्छी तरह जानता हूं। चुटकियोंमें उन्हें मै ठंडा करके अभी आपके सामने हाजिर करता हूं। आप समझते नहीं, पेटमें आग जलने लगती है तो मुंहकी वातें भी गरम होकर निकलने लगती हैं।

वैकुण्ठ—हा हाःहाःहा। वाह भई, वाह! तुम्हारी वातें खूब होती हैं! तो सुनो, (नोट देते हुए) यह लो, तुम इन्तजाम कर लाओ, कुछ खयाल न करना, समझे!

तीनकौड़ी—कुछ नहीं, कुछ नहीं। इससे ज्यादा भी दे देते तो कुछ खयाल नहीं करता, – मेरा वैसा स्वभाव ही नहीं।

[प्रस्थान

ईशानका प्रवेश

ईशान—बाबू ! (बैकुण्ठ निरुत्तर) बाबू ! (निरुत्तर) बाबू सा'ब ! (निरुत्तर) खाना सब ठंडा हुआ जा रहा है ।

वैकुण्ठ (गुस्सेसे)—तू जा यहाँसे, – मैं नहीं खाता ।

ईशान—मुझे माफ करो, बाबू सा'ब, – खाना ठंडा हुआ जा रहा है ।

वैकुण्ठ—नहीं, मुझे नहीं खाना ।

ईशान—तुम्हारे पाँवों पड़ता हूं, – चलो खाने, – नाराज न होओ ।

वैकुण्ठ—जा, कहता हूं, दूर हो मेरे सामनेसे, ज्यादा परेशान न कर ।

ईशान—लो, मेरे अच्छी तरह कान ऐंठ दो,– बाबू—

अविनाशका प्रवेश

अविनाश—क्यों भाई सा'ब, यहाँ बैठे लिख रहे हो क्या ?

बैकुण्ठ—नहीं नहीं, कुछ नहीं, – यहाँ क्यों लिखने लगा ! इसनाके साथ बात कर रहा हूं । – इसना, जा तू, मै आता हूं । [ईशानका प्रस्थान

अविनाश—भाई सा'ब, तनखाके रुपये लाया हूं, – ये लो, दस-दसके दस नोट और पाँच सौका एक ।

वैकुण्ठ—पाँच सौका नोट तुम अपने पास ही रखो, अबू ।

अविनाश—क्यों भाई सा'ब !

वैकुण्ठ—खर्च-वर्चके लिए जरूरत पड़े—

अविनाश—जरूरत पड़नेपर माँग लूंगा—

बैकुण्ठ—तो यहाँ रख दो । तुम्हारे हाथमें रुपये देनेसे भी तो रहते नहीं । जो आता है उसीपर तुम विश्वास कर बैठते हो ! रुपया बचानेके लिए सबसे पहले आदमियोंसे बचना चाहिए , आदमी पहचानना बहुत जरूरी है ।

अविनाश (हँसता हुआ)—इसीलिए तो मै तुम्हारे हाथ सौंपकर निश्चिन्त हो जाता हू, भाई सा'ब ।

वैकुण्ठ—तू हँस क्यों रहा है ! मुझे आज तक कोई ठग सका है, कह

सकता है ? उस दिन जो मैंने 'स्वर-सूत्रसार' पोथी खरीदी थी,–तुमलोगोंने समझ लिया कि मुझे ठग ले गया, – लेकिन मै कहता हूं कि सगीतके सम्बन्धमें ऐसी प्राचीन पोथी कोई कहींसे ला दे तो मैं उसे मुँह-माँगा पुरस्कार दे सकता हूं। हीरोंसे तौली जाय तो भी उसकी कीमत नहीं चुकाई जा सकती। तीन सौ रुपयेमें तो एक तरहसे मुफ्त ही में मिल गई समझो।

अविनाश—उस पोथीके सम्बन्धमें मैंने कुछ कहा है ?

वैकुण्ठ—इसीसे तो मैं समझ गया कि तुमलोग मन-ही-मन समझ रहे हो कि बुड्ढेको ठग ले गया। नहीं तो, कमसे कम उसके बारेमें एक बार भी तो कुछ पूछते-गछते या हाथमें लेकर उलटते-पुलटते—

अविनाश—उसमें है ही क्या, भाई सा'ब, – उलटने-पुलटनेसे उसकी धूल हो जाती।

बैकुण्ठ—इसी बातकी तो कीमत है उसकी। उसकी धूल क्या आजकी धूल है! उसकी धूलको लाख रुपये देकर माथेसे लगानी चाहिए।

अविनाश— भाई सा'ब, इस महीनेमें मुझे पचहत्तर रुपये देने होंगे।

वैकुण्ठ—क्यों, क्या करेगा ? (अविनाश निरुत्तर) नीलामसे विलायती पौधे खरीदेगा, क्यो ? देखो भला, क्या वाहियात लत पड़ गई है, दिन रात मालियोंका मेला लगाये रहता है! न-जाने कितने पौधोंके झूठे नाम बता-बता कर लोग ठग ले जाते हैं जिसकी हद नहीं! – फिर भी तो तू ब्याह नहीं करता!

अविनाश—उससे तो, भाई सा'ब, पौधोंकी लत ही अच्छी। उमर चालीसकी तो हो चुकी, अब ब्याह क्यों!

बैकुण्ठ—क्या कहा! अभीसे चालीस ?

अविनाश—'अभीसे' क्यों ? समय तो ठीक पूरा ही लगा है, – जैसे दूसरोंको लगता है।

वैकुण्ठ—असलमें मेरी ही तरफसे लापरवाही हुई है। छी छी, लोग मुझे स्वार्थी समझेंगे। अब देर करना ठीक नहीं।

अविनाश—एक आदमी बैठा है,– मै चल दिया भाई सा'ब। [प्रस्थान

वैकुण्ठ—जरूर वही मानिकतला-वाला माली होगा। लड़केको नशा हो गया है एक तरहका।

केदारका प्रवेश

वैकुण्ठ—अच्छा, आप लौट आये, – बड़ी खुशी हुई, – तो अब—

केदार—देखिये वैकुण्ठ बाबू, – क्या नाम उसका – आपकी लाइब्रेरीमें संगीत सम्बन्धी सब तरहकी पुस्तकें हैं, लेकिन – क्या नाम उसका – चीन देशका संगीत-शास्त्र शायद नहीं होगा ?

वैकुण्ठ (अत्यन्त चंचल होकर)—जी नहीं, सो तो नहीं है। आपको कहीं उसका सन्धान मिला है क्या ?

केदार—सन्धान क्या, एक हस्त-लिखित पोथी ही जुगाड़ कर लाया हूं। यह पोथी, – जो-है-सो – बहुत कीमती है। यह देखिये। (स्वगत) एक चीनी जूतेवालेसे उसकी दूकानका पुराना खाता मांग लाया हूं।

वैकुण्ठ—अच्छा! खास चीनी-भाषामें लिखी-हुई पुरानी पोथी मालूम होती है। कुछ समझा नहीं जा सकता। आश्चर्य है। हरूफ बड़े साफ हैं। वाह, वाह, है तो बड़े कामकी चीज। इसकी कीमत—

केदार—माफ कीजियेगा, – क्या नाम उसका – कीमत-ईमतका नाम—

वैकुण्ठ—सो कैसे हो सकता है। आप इतना कष्ट उठाकर चीन देशकी पोथी जुगाड़ कर लाये, मेरे लिए यही बहुत है,– आपने मुझे सदाके लिए खरीद लिया, – उसपर और ज्यादा ऋण न चढाइये, चुका नहीं सकूंगा।

केदार (गहरी सांस छोड़कर)—लेकिन, क्या कहूं, – कीमतमें शायद ठगाया गया हूं—

वैकुण्ठ—जी नहीं, आपको वहम हो गया है, – इन सब चीजोंकी कीमत मैं जानता हू, – काफी कीमत देनी पड़ती है तब मिलती हैं ऐसी चीजें!

केदार—लेकिन, वो तो – क्या नाम – सौ रुपया मांग बैठा था। मैंने अस्सी कह दिया है, शायद पचासीमें सौदा तय हो जायगा—

वैकुण्ठ—पचासी! मिट्टीके दाममें मिल रही है, मिट्टीके दाममें! अभी

जाकर रुपये दे आइये, – नहीं तो पीछे पलट गया तो फिर मुश्किल होगी। मालूम होता है बेचारा मुसीबतमें पड़कर ही बेच रहा है, नहीं तो—

केदार—पूरी मुसीबतमें! नहीं तो, आप जानते हैं, – क्या नाम – कोई ऐसी चीज बेच सकता है! सुना है, देशमें उसके तीन सालियाँ हैं, – तीनोंका ही एक कुलीन चीनीसे ब्याह कर देना पड़ेगा। कन्या-दाय भी एक दाय है, मगर साली-दाय तो दाय नहीं, महा संकट है!

बैकुण्ठ (हँसते हुए)—अच्छा, अच्छा! आप तो पूरे रसिक मालूम होते हैं!

केदार—रसिक होना पड़ा है, साहब, रसिक होना पड़ा है! भुक्तभोगी हूँ न! क्या नाम उसका – ससुरालमें सालियाँ अति-उत्तम वस्तु हैं, – ऐसी वस्तु संसारमें दुर्लभ है, – किन्तु वहाँसे स्थानच्युत होकर सहसा सरपर आ पड़े तो – क्या नाम उसका – सम्हालना मुश्किल है!

बैकुण्ठ—सम्हालना मुश्किल है! वाह। हा-हा हा-हा।

केदार—जी, मुझसे तो सम्हालते नहीं बनता। एक तो साली, उसपर सम्पूर्ण त्रुटिहीन सुन्दरी! और-फिर उमरमें – क्या नाम उसका – षोड़शी! मेरे लिए तो घरमें टिकना मुश्किल हो गया है। आँख उठाके देखता हूं तो स्त्री सोचती है कि सालीको ढूंढ रहा हूँ; और आँख मींचे रहता हूं तो वो सोचती है, – क्या नाम उसका – मै सालीका ही ध्यान कर रहा हूँ। बताइये भला! खाँसता हूँ तो – क्या नाम उसका – वह समझती है, इसमें जरूर कोई रहस्य है, और खाँसी दबानेकी कोशिश करता हूं तो – क्या नाम उसका -- अर्थ लगाया जाता है और-भी सन्देह-जनक! बताइये भला!

अविनाशका प्रवेश

अविनाश—क्या भाई सा'ब, उधर खाना ठंडा हुआ जा रहा है, और इधर अभी तक इतिहासकी चर्चा हो रही है!

बैकुण्ठ—इतिहास कुछ नहीं, यों ही बैठा जरा केदार बाबूसे गपशप कर रहा हूं।

अविनाश—अच्छा! केदार! तुम यहाँ कैसे? भाई साहबपर कोई चक्कर चला रहे हो क्या?

केदार—हा'हा हा हा। अविनाश, तुम तो हमेशा बच्चे ही रहे, भाई!

अविनाश—भाई सा'ब, इतिहास सुनानेको तुम्हें और-कोई आदमी ही नहीं मिला! आखिर केदारको पकड़ बैठे! ये हजरत पकड़ते हैं तो फिर छोड़नेका नाम ही नहीं लेते।

वैकुण्ठ—छी, अविनाश, कैसी बात कर रहे हो तुम!

केदार—वैकुण्ठ बाबू, आप परेशान न होइये, – क्या नाम उसका – अविनाशके साथ मै एक क्लासमें पढा-हुआ हूं न, इसीसे – मुझसे मिलते ही मजाक शुरू कर देता है।

अविनाश—लेकिन तुम्हारा मजाक तो मेरे मजाकसे कहीं गहरा होता है। अभी उस दिन तुम मुझसे रुपये ले गये हो, फिर मालूम होता है रुपयोंकी जरूरत पड़ी है, इसीसे भाई साहबकी रचना सुनने आये हो!

केदार—भाई अविनाश, – क्या नाम उसका – कभी-कभी तो तुम्हारी बातें ऐसी होती हैं जैसे सच ही बोल रहे हो! मालूम नहीं वैकुण्ठ बाबू क्या खयाल करते होंगे, सोचते होंगे—

वैकुण्ठ (चंचल होकर)—नहीं नहीं, केदार बाबू, मै कुछ भी खयाल नहीं करता। लेकिन, अविनाश, तुम्हारा मजाक बड़ा रूढ होता है। मित्रके साथ भी—

अविनाश—मै मजाक नहीं कर रहा, भाई सा'ब—

वैकुण्ठ—अच्छा! मजाक नहीं! अभद्र कहींका। केदार बाबू मेरे घर आये हैं, यह मेरा सौभाग्य है। तू मेरे सामने इनका अपमान करता है!

केदार—अह-ह, नाराज न होइये, वैकुण्ठ बाबू—

अविनाश—भाई सा'ब, आप व्यर्थ ही नाराज हो रहे हैं। केदारका अपमान किस बातका!

वैकुण्ठ—फिर! तुझसे मै बात नहीं करता, जा यहाँसे।

अविनाश—माफ करो भाई सा'ब। (बैकुण्ठ निरुत्तर) मेरा कसूर माफ करो। (बैकुण्ठ निरुत्तर) भाई सा'ब, आप नाराज न होओ—

बैकुण्ठ—तो सुन। केदार बाबूकी एक ब्याह-लायक साली है, बहुत ही सुन्दर, – और तेरा भी ब्याह नहीं हुआ, समझा—

केदार—योग्यं योग्येन योजयेत्।

बैकुण्ठ—ठीक कहते है आप, मेरे मनकी बात कह दी है आपने।

केदार—मेरे मनकी भी ठीक यही बात है।

अविनाश—लेकिन, भाई सा'ब, मेरे मनकी बात इससे कुछ भिन्न है। मेरी ब्याह करनेकी इच्छा नहीं है—

केदार—अविनाश, यह तुम्हारा खूब मजाक रहा! ब्याह करनेके पहले ही अनिच्छा! क्या नाम उसका – करनेके बाद अगर अनिच्छा होती तो उसके कुछ मानी भी हो सकते थे।

बैकुण्ठ—लड़की तो सुन्दर है—

अविनाश—उसे देखा है तुमने?

बैकुण्ठ—देखनेकी क्या जरूरत? केदार बाबू खुद कह रहे है।

[अविनाश चुप रहता है]

केदार—विश्वास नहीं होता? क्या नाम उसका – मेरा चेहरा देखकर ही डर गये, लेकिन – क्या नाम उसका – वह तो मेरी साली है, मेरी स्त्रीकी सहोदरा, मेरे वंशकी कोई नहीं। एक बार अपनी आँखोंसे देख आओ न?

बैकुण्ठ—यह तो अच्छी बात है, – तुम खुद जाकर देख आओ।

अविनाश—देखकर क्या करूंगा! घरमें मै बाहरके किसीको नहीं लाना चाहता—

केदार—सो मत लाना, लेकिन – क्या नाम उसका – बाहरकी किसीकी तरफ देखनेमें क्या हर्ज? एक बार देख आनेमें घरका भी कोई नुकसान नहीं, और बाहरका भी कुछ घिस नहीं जायगा।

अविनाश—अच्छी बात है, देख आऊंगा। अब तुम उठो भाई सा'ब, भोजन कर लो। नीरुने भेजा है मुझे।

बैकुण्ठ—लेकिन, केदार बाबूके लिए पहले—

केदार—आप भी खूब हैं !

अविनाश—बगैर कहे खाना अपने-आप तो आयेगा नहीं। ईशानको बुलाकर जरा—

केदार—नहीं नहीं, ईशान-नैऋतकी जरूरत नहीं, – क्या नाम उसका – उससे पहले ही बातचीत हो चुकी है।

पूड़ी-मिठाईका दोना हाथमें लिये-हुए
तीनकौड़ीका प्रवेश

तीनकौड़ी—ये लो, – बैठ जाओ, – मैं परोसता हूं।

बैकुण्ठ—तुम भी बैठ जाओ न, परोसनेका इन्तजाम मैं किये देता हूं।

तीनकौड़ी—आप चंचल न होइये, बाबू साहब, मैंने पहले ही खा-पी लिया है।

केदार—तू बड़ा बेअदब है रे, पेटू कहींका !

तीनकौड़ी—क्या करूं भाई सा'ब, अभागे तीनकौड़ीकी तकदीर भी तो तीन-कौड़ीकी ही है ! जिन्दगी-भर देखता आया हूं, काम चाहे अच्छा हो या बुरा, विघ्न लगा ही हुआ है। जनमते ही दूधके लिए रोना शुरू किया, सो ठीक उसी वक्त मा मर गई। सबर करूं तो किसके भरोसे !

अविनाश—इस छोकड़ेको कहांसे जुटा लाये केदार ?

केदार—क्या नाम उसका – देश-देशान्तर नहीं घूमना पड़ा, अपने-आप ही आ जुटा है। अब इसे छोड़ूं कहाँ जाकर – क्या नाम उसका – मैं तो इसी फिकरमें दुबला हुआ जा रहा हूं।

अविनाश—भाई सा'ब, तुम खाने जाओ।

बैकुण्ठ—सो कैसे हो सकता है ! पहले ये खा-पी लें—

केदार—सो नहीं होगा, बैकुण्ठ बाबू, आप जाइये, हमलोग—

बैकुण्ठ—अजी, आप कुछ संकोच न कीजिये, खिलाने-पिलानेमें मुझे बड़ा आनन्द आता है।

तीनकौड़ी—इसमें क्या है,—आप कल फिर देख लीजियेगा। हम भागे थोड़े ही जा रहे हैं!

केदार—तीनकौड़ी,—क्या नाम उसका—बल्कि तू दोनेको लेकर घर चला चल। वहीं—क्या नाम उसका—खा-पी लेंगे। झूठमूठको इन्हें क्यों तकलीफ देना!

तीनकौड़ी—आज अब तकलीफ किस बातकी! कलकी कल देखी जायगी।

[अविनाश हँस देता है]

बैकुण्ठ—यह लड़का आपका तो खूब बातें करता है, केदार बाबू! मुझे यह बड़ा प्यारा लगता है।—लेकिन, खाना-पीना आपको यहीं करना पड़ेगा—

ईशानका प्रवेश

ईशान—बाबू सा'ब!

बैकुण्ठ—अरे, आया भई, आया। तो आपलोग जायेंगे ही, क्यों? अच्छा जाइये, कल—

तीनकौड़ी—जी नहीं, आपको मुसीबतका सामना करना पड़ेगा।

[बैकुण्ठ अविनाश और ईशानका प्रस्थान

तीनकौड़ी (केदारसे)—यह लो, भाई सा'ब, ये बचे-हुए रुपये सम्हालो। यह चीज मेरे हाथमें टिकती नहीं।

केदार—तेरे बापने तेरा नाम रखा था तीनकौड़ी,—पर तू है असलमें हीरालाल! लाखों रुपया कीमत है तेरी!

[दोनोंका प्रस्थान

—

दूसरा दृश्य

केदार और अविनाश

केदार—क्या नाम उसका – तो आज चल दिया,- बहुत परेशान किया तुम्हें—

अविनाश—परेशानीकी क्या बात है। बैठो न जरा। सुनो, – मेरे चले आनेके बाद उस दिन मनोरमा मेरे विषयमें कुछ कह रही थी क्या ?

केदार—वो कुछ कहेगी! तुम्हारा नाम लेते ही उसके गाल -क्या नाम उसका – विलायती बेंगनकी तरह लाल हो उठते हैं।

अविनाश (हँसते-हँसते)—अच्छा! इतनी शरम!

केदार—हाँ जी, – क्या नाम उसका – यही तो खराब लक्षण है।

अविनाश (केदारको धक्का देकर)—अच्छा! तुम्हारा तो दिमाग खराब हो गया है, – इसमें खराब लक्षण क्या पाया, सनूं भी तो ?

केदार—क्या नाम उसका – यह स्वभावका नियम है। जैसे तीरका छूटना, – पहले पीछेकी तरफ जबरदस्त खिंचाव पड़ता है, उसके बाद – क्या नाम उसका – छुटकारा पाते ही सामनेकी तरफ साँय-से हवाकी तरह दौड़ पड़ता है। शुरूमें जहाँ ज्यादा शरम देखाई दे, वहाँ समझ लो कि प्रेमकी दौड़ तीरसे कम नहीं!

अविनाश—तुम भी खूब हो, केदार! हाँ तो, कैसी शरम देखी तुमने, सुनाओ भी तो! तुमलोगोंने शायद मेरा नाम लेकर मजाक किया होगा उससे ?

केदार—अरे, एक नहीं, बहुत-सी बातें हैं। आज जरा काम है, आज जाने दो मुझे—

अविनाश—ओ-हो-हो, बैठो न जरा। सुनो भी तो,- एक कामकी बात करनी है तुमसे। एक अंगूठी ली है मैंने, समझे!

केदार—यह तो बहुत आसान बात है, इसमें समझना क्या!

अविनाश—आसान बात है ? अच्छा, क्या समझे, बताना जरा ?

केदार—रुपये हाथमें हों तो अंगूठी खरीदना आसान बात है -- क्या नाम उसका – यही समझा, और क्या !

अविनाश—तो खाक समझा तुमने ! उस अंगूठीको मै तुम्हारे हाथ मनोरमाके लिए उपहारमें भेजना चाहता हूं। इसमें कोई दोष है ?

केदार—मुझे तो इसमें कोई दोष नजर नहीं आता। और अगर हो भी, तो दोषको छोड़कर – क्या नाम उसका -- सिर्फ अंगूठी ले लेनेसे ही काम चल सकता है।

अविनाश— ओह्, अपना मजाक अभी रहने दो। जो कहता हूं सो सुनो, – अंगूठीके साथ एक चिट्ठी लिख भेजूं तो कैसा ?

केदार—इसमें क्या बात है।

अविनाश—तो यह लो अंगूठी, – चिट्ठी चटसे लिखे देता हूं।

[चिट्ठी लिखने लगता है]

केदार (स्वगत)—अंगूठी तो प्राप्त हुई। किन्तु, दोनों भाइयोंके बीच परिश्रम बहुत ज्यादा पड़ रहा है। अब, ब्याह जल्दी हो जाय तो फिर जरा विश्राम करनेका समय मिले।

वैकुण्ठका प्रवेश

वैकुण्ठ (झांककर स्वगत)—अच्छा, अब तो केदार बाबूसे घुटने लगी है ! लड़की देखनेके बादसे, अब तो यह इनका पिण्ड ही नहीं छोड़ रहा। सनकी मिजाजका ठहरा न, जिधर झुका उधर झुक ही गया। केदार बाबू लेकिन परेशान मालूम हो रहे हैं, इनका उद्धार करना ही चाहिए। (कमरेमें घुसकर) कहिये, केदार बाबू, क्या समाचार है ? एक नया परिच्छेद और लिख डाला है, आपको सुनाना चाहता हूं। आपके तो दर्शन ही नहीं होते—

केदार—अजी, मेरा तो हाल बड़ा बेहाल हो रहा है। –

अविनाश (चिट्ठी ढककर)—भाई सा'ब, केदार बाबूसे एक कामकी बात करनी थी।

वैकुण्ठ (स्वगत)—कामका तो कोई ठिकाना ही नहीं ! लड़केका दिमाग

बिलकुल फिर गया मालूम होता है। (प्रगट) लेकिन केदार बाबूके बिना मेरा काम जो अटका पड़ा है।

नौकरका प्रवेश

नौकर—बाबू सा'ब, मानिकतल्लासे माली आया है।

अविनाश—अभी उसे जानेके लिए कह दे। [नौकरका प्रस्थान

वैकुण्ठ—जा न जरा, सुन आ, क्या कहता है। तब तक मैं बैठा हू इनके पास—

केदार—मेरे लिए परेशान न होइये आप,–क्या नाम उसका–चल दिया, आज मुझे जरा काम है—

अविनाश—नहीं नहीं, केदार, बैठो जरा।

वैकुण्ठ—नहीं नहीं, आप बैठिये। देखो अविनाश, पेड़-पौधोंके विषयमें तुम जो स्टडी कर रहे हो उसमे लापरवाही न करना। तुम्हारा वो काम बड़ा स्वास्थ्यकर है, और आनन्दजनक भी।

अविनाश—जरा भी लापरवाही नहीं करता, भाई सा'ब,–आज एक जरूरी काम आ पड़ा है, इसीसे—

वैकुण्ठ—अच्छा तो तुमलोग बैठो। केदार बाबू बेचारे बड़े भले-आदमी हैं, इन्हें ज्यादा परेशान न करना। (स्वगत) जरा भी विचार नहीं इसे, असलमें उमरका दोष है।

तीनकौड़ीका प्रवेश

केदार—अब यहाँ किस लिए?

तीनकौड़ी—डरनेकी क्या बात है, भाई सा'ब! दो हैं,–एकको तुम ले लो, एकको मुझे दे दो।

वैकुण्ठ—हाँ हाँ, यही ठीक है। चलो, तुम मेरे कमरेमें चलो।

केदार—तीनकौड़िया, तू मुझे किसी दीनका न रहने देगा।

तीनकौड़ी—लेकिन और-सब लोग कहते हैं, तुम मुझे किसी दीनका न रखोगे। (पास जाकर) नाराज क्यों होते हो, भाई साहब,–जिस दिनसे

तुम्हें देखा है उस दिनसे अपने बाप-भाई-चचा तक मुझे देखे नहीं सुहा ते, इतना चाहता हूं मै तुम्हें !

केदार—फालतू क्यों बक रहा है,– तेरे बाप-भाई-चचा हैं भी कहीं !

तीनकौड़ी—कहनेसे विश्वास नहीं करोगे, लेकिन हैं, भाई सा'ब। उसमें न तो कोई खर्चा है, न कोई महात्म्य। तीनकौड़ीके भी बाप-भाई-चचा हो सकते हैं, – हाँ, अगर मुझे खुद बना लेने पड़ते तो शायद नहीं होते।

वैकुण्ठ—हा·हा·हा हाः। लड़का यह बातें खूब करता है! चलो तीनकौड़ी, तुम मेरे कमरेमें चलो। [दोनोंका प्रस्थान

अविनाश—बिलकुल संक्षेपमें लिख दिया है, समझे केदार, – सिर्फ एक लाइन – "देवीके चरण-तले भक्तका पूजोपहार।"

केदार—हाँ, कोई बात छूटी नहीं, – अच्छा लिखा है! – अच्छा तो अब चलता हूं।

अविनाश—लेकिन "चरण-तले" शब्द यहाँ ठीक बैठा कहाँ ? – अंगूठी है न—

केदार—तो – क्या नाम उसका – "करकमलोंमें" कर दो।

अविनाश—पर 'करकमलोंमें पूजोपहार' सुननेमें कैसा-तो लगता है!

केदार—तो फिर 'पूजाका उपहार' न करके – क्या नाम उसका—

अविनाश—सिर्फ "उपहार" लिखनेसे बड़ा सूना-सा सुनाई देता है, "पूजोपहार" रहने दिया जाय—

केदार—रहने दो—

अविनाश—तो फिर "करकमलों"का क्या किया जाय ?

केदार—"चरण-तले" ही रहने दो – क्या नाम – उसमें नुकसान क्या है ? अच्छा तो अब जाने दो मुझे।

अविनाश—जरा ठहरो, – अंगूठीके सम्बन्धमें "चरण-तले" जरा-कुछ ऊटपुटांग-सा मालूम पड़ता है।

केदार—ऊटपुटाग क्यों होने लगा! तुम तो चरण-तले अर्पण करके छुट्टी पा गये, उसके बाद – क्या नाम उसका – वो करकमलोंमें उठायेगी कैसे,

यही-न सवाल रह जाता है, सो अगर वो स्वयं न उठा सके तो और-कोई उठा देगा।

अविनाश—अच्छा, 'पूजोपहार' न लिखकर यदि 'प्रणयोपहार' लिखा जाय तो कैसा?

केदार—अगर वह चट-से लिखा जाय तो वही अच्छा।

अविनाश—लेकिन ठहरो, जरा सोच देखूं।

ईशानका प्रवेश

ईशान—उधर खाना ठंडा हुआ जा रहा है जो!

अविनाश—अच्छा, सो खा लूंगा, तू जा।

ईशान—आखिर कब तक बैठी रहेंगी दीदी—

अविनाश—अच्छा सुन लिया, तू जा तो अभी—

ईशान (केदारसे)—बड़े बाबूका तो खाना-पीना-सोना छुड़ा दिया, अब क्या छोटे बाबूका भी दिमाग खराब करना चाहते हो?

केदार—भाई ईशान, यद्यपि तुम मेरा नमक नहीं खाते, फिर भी – क्या नाम उसका – मेरी हालत भी जरा सोच देखो। तुम्हारे बड़े बाबू खूब विस्तारके साथ लिखा करते हैं, और छोटे बाबू – क्या नाम उसका – अत्यन्त संक्षेपमें लिखते हैं, लेकिन मेरी तकदीरसे दोनोंकी लिखावट समान हो जाती है। अविनाश, तुम्हारा खाना तैयार है – क्या नाम उसका – तुम खाने जाओ, मै चल दिया।

अविनाश—क्यों, चले क्यों जाओगे! तुम भी खा लो न। जा, इसना, बाबूके लिए भी तैयारी कर।

ईशान—पहलेसे तो कुछ कहते नहीं, — अब मै कैसे तैयारी करूं?

अविनाश—जंगली कहींका, – कहता है, कैसे तैयारी करूं! जा जा, जल्दी कर।

ईशान—बड़े बाबू तो थे ही, – अब इनका भी वही हाल होता जाता है। मेरा तो अब टिकना मुश्किल हो गया। [प्रस्थान

अविनाश—यहाँ 'प्रणयोपहार' लिखनेसे 'देवी' शब्द बदलना पड़ेगा। देवीके साथ 'प्रणय' कैसे हो सकता है ?

केदार—क्यों नहीं हो सकता ! तो फिर स्वर्गकी देवियाँ – क्या नाम उसका – जीती कैसे हैं ? भाई आविनाश, स्त्रीजाति स्वर्ग-मर्त्य-पाताल जहाँ भी रहे – क्या नाम उसका – उनके साथ प्रणय हो सकता है, और – क्या नाम उसका – होता भी है। तुम इतनी चिन्ता न करो। (स्वगत) अब मेरा पिण्ड तो छोड़, देवता !

तीनकौड़ीका प्रवेश

तीनकौड़ी—ओ भाई साहब ! तुम अपनी जगह बदल लो। तुम वहाँ जाओ, मै इनके पास रहूंगा।

केदार—क्यों क्या हुआ ?

तीनकौड़ी—बाप रे बाप ! पोथा है या आफत ! मुझे उसमें घुसा दिया गया तो फिर मै ढूंढे नहीं मिलनेका। मुझे पोथा पढने देकर बुड्ढा कहाँ चला गया पता नहीं, – मै तो भागा वहाँसे।

वैकुण्ठका प्रवेश

वैकुण्ठ—क्यों तीनकौड़ी, भाग कैसे आये ?

तीनकौड़ी—आपने इतना बड़ा एक पोथा लिख डाला, और इत्ती-सी बात नहीं समझमें आई !

वैकुण्ठ—केदार बबू, आप एक बार चलें तो –

केदार—चलिये। (स्वगत) रामके हाथसे मरा तो भी मरना है और रावणके हाथसे मरा तो भी मरना है, – लेकिन अविनाशकी इस एक लाइनसे तो मै उकता गया !

अविनाश—केदार, तुम जा कहाँ रहे हो ? भाई सा'ब, मेरा वो काम अभी—

वैकुण्ठ (गुस्सा होकर)—दिन-रात तेरा तो काम ही काम रहता है !

तीनकौड़ी—आपकी बात है, आप लिखिये। उसमें मेरा कुछ कहना ठीक नहीं, – मेरी तो वह बहन है न !

अविनाश—नहीं-नहीं, सो नहीं कह रहा मैं। अंगूठी क्या चरणोंमें दी जा सकती है ? 'करकमलोंमें' लिखनेसे—

तीनकौड़ी—सिर्फ चिट्ठीमें ही तो लिखना है, – सो, 'चरण-तले' लिखकर करकमलोंमें देनेसे ही काम चल जायगा। इसके लिए कोई अदालतमें नालिश थोड़े ही करेगा !

अविनाश—नहीं जी, जो-कुछ लिखा जाय उसका अर्थ भी तो ठीक होना चाहिए।

तीनकौड़ी—अंगूठी हो तो फिर अर्थकी क्या जरूरत है ? उसीसे समझ जायेंगी।

अविनाश—लेकिन अंगूठीकी अपेक्षा बातकी कीमत ज्यादा है, सो तो जानते हो ?

तीनकौड़ी—बातोंकी कोई कीमत होती तो मेरी आज ऐसी दशा ही क्यों होती !

अविनाश—ओ-हो, तुम क्या बक रहे हो, कुछ समझमें नहीं आता। जरा मन लगाकर सुनो मेरी बात। उस लाइनको अगर इस तरह लिखा जाय तो कैसा रहे, "प्रेयसीके करकमलोंमें अनुरक्त सेवकका प्रणयोपहार !"

तीनकौड़ी—अच्छा रहे।

अविनाश—अच्छा रहे ! मुंहसे कह देनेसे ही हो गया, 'अच्छा रहे !' जरा सोचकर कहो न !

तीनकौड़ी (स्वगत)—बाप रे बाप ! इसमें तो गुस्सा भी है। बुड्ढेमें कमसे कम गुस्सा तो नहीं था। (अविनाशसे) सोचनेसे तो, शायद पहलेकी लाइन ही अच्छी थी।

अविनाश—क्यों ? इसमें क्या दोष है ?

तीनकौड़ी (स्वगत)—दोष नहीं तो फिर मुझे खामखा सोचनेके लिए क्यों कहा ? इसने तो बड़ी मुसीबतमें डाल दिया। (अविनाशसे) बात यह

है, अविनाश बाबू, सोचनेसे ही कोई-न-कोई दोष निकल आता है, न सोचो तो कुछ नहीं, मैं तो इतना ही समझता हूं।

अविनाश—हां, अब मै समझ गया, – तुम्हारा कहना है कि ब्याहके पहले ही 'प्रेयसी' सम्बोन्धन करनेसे लोग कुछ खयाल कर सकते हैं—

तीनकौड़ी (स्वगत)—भगवानने बात रख ली। (अविनाशसे) जी हां, यही बात है। और एक बात है, अविनाश बाबू, आपसमें आपने 'प्रेयसी' लिख भी दिया तो क्या है! और-कोई थोड़े ही लिख रहा है। यही लिख दीजिये।

अविनाश—नहीं, जरूरत नहीं, – पहलेकी लाइन ही ठीक है—

तीनकौड़ी—मेरी भी तो यही राय थी।

अविनाश—लेकिन जरा सोच तो देखो, वाक्य कैसा तो खटकता है!

तीनकौड़ी (स्वगत) बाप रे! – यह तो फिर सोचनेके लिए कहता है। (अविनाशसे) देखिये अविनाश बाबू, बचपनसे ही मैंने किसीके लिए कुछ नहीं सोचा, और मेरे लिए भी किसीको कुछ नहीं सोचना पड़ा। सोचनेकी मेरी आदत ही नहीं। इसके सिवा—

अविनाश—ओ-हो-हो, तीनकौड़ी, तुम जरा चुप भी रहो। अपनी ही बात बकते चले जा रहे हो, – मुझे भी तो जरा सोचने दो।

तीनकौड़ी—आप सोचिये न। मुझे क्यों सोचनेके लिए कहते हैं! जरा ठहरिये आप, मै केदार बाबूको बुलाये लाता हूं। वे मुझसे ज्यादा सोचना भी जानते हैं, और सहजमें समस्याका समाधान भी कर सकते हैं। (स्वगत) मेरे लिए तो वो बुड्ढा ही अच्छा। [प्रस्थान

केदार और बैकुण्ठके साथ तीनकौड़ीका पुनःप्रवेश

बैकुण्ठ—अविनाश, केदार बाबूसे फिर तुम्हें क्या जरूरत पड़ गई? मै इन्हें अपना नया परिच्छेद सुना रहा था, – तीनकौड़ी इनके पीछे ही पड़ गया, आखिर पैरोंसे लिपट गया—

अविनाश—मेरा वो काम अभी खतम नहीं हुआ, इसीसे—

वैकुण्ठ (गुस्सा होकर)—तुम्हारा काम खतम नहीं हुआ तो यहाँ कौनसा परिच्छेद खतम हो गया था ?

अविनाश—अच्छा तो, तुम इन्हें ले जाओ—

केदार (चंचल होकर)—क्या नाम उसका – तुम्हारा भी तो वह काम जरूरी है, अविनाश, – क्या नाम उसका – अब और देर करना तो ठीक नहीं।

वैकुण्ठ (केदारसे)—अजी, आप इसकी चिन्ता न करें। (अविनाशसे) अपने कामके लिए तुम इन्हें इस तरह परेशान न किया करो, अविनाश। ऐसा करनेसे ये यहाँ आना ही बन्द कर देंगे।

तीनकौड़ी—इसकी फिकर आप कतई न करें, बाबू सा'ब। हम दोनोंको भगवानने ऐसा वर दिया है कि बुलाये बिना-बुलाये और भगाये जानेपर भी हमारा आवागमन बन्द नहीं होता। बहुतसे लोगोंका तो यहाँ तक सन्देह है कि मर जानेपर भी हम लौट आयेंगे !

केदार—अरे ओ कोढिया ! नहीं मानेगा तू !

तीनकौड़ी—भाई सा'ब, पहलेसे कह देना अच्छा, – पीछेसे ये कुछ खयाल तो नहीं करेंगे !

ईशानका प्रवेश

ईशान (अविनाश और केदारसे)—बाबू सा'ब, आप दोनोंके लिए पाटा लग गया है।

तीनकौड़ी—और मेरे लिए ताला लगा दिया क्या ? जन्मते ही जिसकी अपनी मा धोखा देकर मर गई, भला, मित्र उसके लिए क्या कर सकते हैं ! लेकिन, साई सा'ब, खयाल करो जरा, तुम्हारा कोढ़िया कभी तुम्हें बगैर हिस्सा दिये नहीं खाता।

केदार—फिर !

तीनकौड़ी—खैर, तुम जाओ, चटसे खा आओ। देर करनेसे मैं लोभ न सम्हाल सकूंगा, – समझूंगा, छत्तीस व्यंजन उड़ा रहे हो !

वैकुण्ठ—ऐसी क्या बात है तीनकौड़ी, तुम बगैर खाये रह जाओगे ! ऐसा भी कभी हो सकता है। – इसना !

ईशान—मैं कुछ नहीं जानता। जाता हूँ। [प्रस्थान

अविनाश—चलो न, तीनकौड़ी। इन्तजाम हो ही जायगा।

तीनकौड़ी—खींचातानीकी क्या जरूरत ! आपलोग चलिये। खिलानेका रास्ता वैकुण्ठ बाबूको मालूम है, – उस दिनकी बात याद है।

[तीनकौड़ी और वैकुण्ठका प्रस्थान

अविनाश—तो उस लाइनको—

केदार—हाँ, – क्या नाम उसका – खानेके बाद ठीक करेंगे।

तीसरा दृश्य

केदार

केदार—सालीका ब्याह तो निर्विघ्न सम्पन्न हो गया। लेकिन, वैकुण्ठके रहते मेरा यहाँ निर्विघ्न रहना नहीं हो सकता। उपद्रव तो किये जा रहे हैं, पर बुड्ढा हिलनेका नाम ही नहीं लेता !

वैकुण्ठका प्रवेश

वैकुण्ठ—कहिये, केदार बाबू, क्या हालचाल है ? आज आपका चेहरा रूखा-रूखा क्यों है ? कोई शिकायत तो नहीं ?

केदार—जी हाँ, – क्या नाम उसका – डाक्टरने मानसिक परिश्रमकी बिलकुल मनाही कर दी है।

वैकुण्ठ—तब तो बड़ी चिन्ताकी बात है। आप कुछ दिन यहीं विश्राम कीजिये न !

केदार—मैंने भी यही तय किया है।

वैकुण्ठ—हाँ, ठीक है, – वेणी बाबू—

केदार—वेणी-बाबू नहीं, विपिन बाबू—

वैकुण्ठ—हाँ, विपिन बाबू, – अपनी बहू-रानीके क्या-तो लगते हैं वे—

केदार—चाचा लगते हैं—

बैकुण्ठ—हाँ, चचा ही लगते होंगे। उनके रहनेके लिए किसीने मेरा यह लिखने-पढनेका कमरा बता दिया है, – सो—

केदार—सो, उन्हें कोई दिक्कत नहीं, बड़े आरामसे हैं—

बैकुण्ठ—लेकिन, आप तो जानते हैं, मै इसी कमरेमें लिखा करता हूँ—

केदार—हाँ तो, इसमें क्या है, आप – क्या नाम है सो – शौकसे लिखा कीजिये। विपिन बाबूको इसमें – क्या नाम है सो – कोई आपत्ति थोड़े ही हो सकती है।

बैकुण्ठ—नहीं, आपत्ति क्यों करने लगे बेचारे! बड़े भले-आदमी हैं वे। लेकिन बात यह है न, उन्हें एक शौक है, बिस्तरपर पड़े-पड़े हमेशा कोई-न-कोई गाना गुनगुनाते रहते हैं, – उससे लिखते समय—

केदार—इसके लिए – क्या नाम है सो – आप चिन्ता न कीजिये। आप उन्हें बुलाकर कह दीजिये न—

बैकुण्ठ—न न न। इसकी जरूरत नहीं। वे भले आदमी हैं—

केदार—तो मै ही – जो है सो – उन्हें बुलाकर डाटे देता हूं—

वैकुण्ठ—नहीं नही, ऐसा न कीजिये। लिखते वक्त गाना तो – खैर – मुझे अच्छा ही लगता है। लेकिन मै सोचता हू, और कोई कमरा होता तो अच्छा होता, – वे जी खोलकर गा सकते थे।

केदार—तब तो – क्या नाम उसका – बिलकुल उलटा होता। उन्हें एक आदमी हमेशा चाहिए ही चाहिए।

बैकुण्ठ—हाँ, ठीक कहते हैं आप, – आदमी बड़े मिलनसार हैं, – चुप नही बैठ सकते वे, गायेंगे या गपशप करेंगे। सो, मै उनकी कदर करता हूं। पर बात यह है, केदार बाबू, – आप कुछ खयाल न कीजियेगा, – मेरे मनको एक गहरी चोट लगी है, – मै आपसे कुछ कह नहीं सकता। मेरी उस 'स्वर-सूत्रसार' पोथीका पता नहीं लग रहा है!

केदार—कहाँ रखी थी बताइये तो ?

वैकुण्ठ—सो तो आपको मालूम है। इस कमरेमें आलमारीके ऊपर रखी थी। आजकल इस कमरेमें हमेशा लोगोंका आना-जाना बना रहता है, मै किसीसे कुछ कह नहीं सकता, – पर आलमारीकी वो जगह सूनी देखता हूं तो मुझे ऐसा लगता है जैसे किसीने मेरी पसलीकी एक हड्डी निकाल ली हो।

केदार—तो सुनिये, आपसे एक बात कहता हूं – क्या नाम उसका – अविनाश आपकी लाइब्रेरीसे किताब ले जाया करता है।

वैकुण्ठ—अविनाश ! वो तो मेरी उन-सब किताबोंको पढ़ता नहीं।

केदार—पढता नहीं – क्या नाम उसका – बेच दिया करता है।

वैकुण्ठ—बेच दिया करता है !

केदार—जी हाँ, नया प्रेम ठहरा, नया शौक है – क्या नाम उसका – खर्चा ज्यादा है न ! मै उससे कहता हूं, – क्या नाम है सो – तनखाके रुपयोंमेंसे कुछ अपने पास रख लिया करो। लेकिन, इसमें उसे – क्या नाम है सो – शरम मालूम होती है।

वैकुण्ठ—बच्चा है अभी। प्रेमकी भी उपेक्षा नहीं कर सकता, और-फिर बड़े भाईके सम्मानका भी खयाल है।

केदार—सो, क्या नाम उसका – जैसे भी होगा, मै आपकी पोथी उद्धार कर लाऊँगा—

वैकुण्ठ—हाँ,- जितने भी रुपये लगें। आपका मैं चिरऋणी रहूंगा।

केदार (स्वगत)—बाजारमें तो उसकी चार पैसे भी कीमत नहीं, – यह अच्छा रहा, धर्मकी भी रक्षा हुई और कुछ माल भी हाथ लगेगा। [प्रस्थान

अविनाशका प्रवेश

अविनाश—भाई सा'ब !

वैकुण्ठ—क्या है, अबू ?

अविनाश—मुझे कुछ रुपयोंकी जरूरत है—

वैकुण्ठ—इसमें शरमानेकी क्या बात है, भाई ! बल्कि मै तो कहता हूं,

अपनी तनखाके रुपये तुम अपने पास ही रखा करो – मैं तो बूढा हो चला, – इधर-उधर रखकर भूल जाता हू, कोई हिसाब ही नहीं। मुझे कुछ याद ही नहीं रहता।

अविनाश—यह कैसी नई बात कर रहे हो, भाई सा'ब!

वैकुण्ठ—नई बात कुछ नहीं, भाई, – अब तुम ब्याह करके गृहस्थ हुए हो, – मै तो संन्यासी आदमी ठहरा—

अविनाश—तुम्हींने तो, भाई सा'ब, मेरा ब्याह करा दिया, – उसीसे अगर मुझे गैर समझने लगे हो, तो जाने दो,– रुपये-पैसेके बारेमें अब मै कभी कोई बात ही नहीं करूगा। [प्रस्थान

वैकुण्ठ—अरे, सुन सुन, सुन तो सही, – गुस्सा क्यों हो गया, – बात तो सुन जा।

"मोसे न सही जायँ पराई बतियाँ" गाते-हुए
विपिनका प्रवेश

वैकुण्ठ—कहिये वेणी बाबू—

विपिन—मेरा नाम है विपिनविहारी।

बैकुण्ठ—हाँ हाँ, विपिन बाबू। आपके बिस्तरपर ये जो किताबें पड़ी हुई हैं, इन्हें आप पढते है क्या ?

विपिन—नहीं तो, पढने क्यों लगा, – बजाता हूं।

वैकुण्ठ—बजाते हैं! – तो आपके लिए तबला या मृदंग—

विपिन—सो तो मुझे बजाना नहीं आता, – मै किताब बजाया करता हूँ। देखिये वैकुण्ठ बाबू, कई दिनसे आपसे एक बात कहनेकी सोचता हूं, लेकिन भूल जाता हू, – मेरे इस कमरेमें आपकी जो टेबिल और आलमारियाँ पड़ी हुई हैं इन्हें आप यहाँसे हटा लीजिये, – आप तो जानते हैं, मेरे मित्रोंका आना-जाना बराबर बना ही रहता है, उनके लिए बैठनेकी जगह नहीं यहाँ—

वैकुण्ठ—लेकिन, और तो कोई कमरा नहीं, – उधरवाले कमरेमें केदार बाबू हैं, – डाक्टरने उन्हें विश्राम करनेको कहा है, – और, इधरवाले

कमरेमें कौन-कौन हैं, मैं उन्हें जानता नहीं, – सो मेरे कहनेका मतलब यह है, वेणी बाबू—

विपिन—वेणी बाबू नहीं, विपिन बाबू।

वैकुण्ठ—हाँ हाँ, विपिन बाबू, – सो, इन्हें अगर एक कोनेमें दीवारसे सटाकर रख दिया जाय तो क्या आपको कोई दिक्कत होगी ?

विपिन—दिक्कत तो क्या होगी, – पर तकलीफ तो है ही। खासकर मै जरा खुली जगह पसन्द करता हूँ। – "मोसे न सही जायें पराई बतियाँ।"

ईशानका प्रवेश

वैकुण्ठ—आ गया तू, अच्छा हुआ,– सुन, इस कमरेमें वेणी बाबूको—

विपिन—वेणी नहीं, विपिन बाबू।

वैकुण्ठ—हाँ, – विपिन बाबूको बड़ी तकलीफ है—

ईशान—तकलीफ उठानेकी जरूरत क्या है ! इनके बाप-दादोंका घर तो होगा ही कहीं-न-कहीं, – वहीं चले जायें।

वैकुण्ठ—फिर छोटे मुंह बड़ी बात ! नालायक कहींका !

विपिन—कैसा बत्तमीज है तू, बात करनेका शऊर नहीं !

ईशान—देखो, गाली-गलौज न करो, कहे देता हूँ !

वैकुण्ठ—अरे ओ इसना, चुप रह !

विपिन—जानता है मै कौन हू ! इस घरमें अब मेरी पाँवकी धूल भी नहीं रहना चाहती, – मै चल दिया अभी।

वैकुण्ठ—जाइये नहीं, वेणी बाबू, – मैं हाथ जोड़कर माफी माँगता हूँ।

[वैकुण्ठको धक्का देते-हुए विपिनका प्रस्थान

वैकुण्ठ—देख, इसना, तू बहुत सरपर चढ गया है ! बता तो, क्या किया तैने ! अब तू मुझे घरमें टिकने नहीं देगा मालूम होता है।

ईशान—मैं नहीं टिकने दूँगा !

वैकुण्ठ—देख, बहुत दिनसे तू हमारे यहाँ है, तेरी बातोंके हम तो आदी

हो गये हैं, – लेकिन बाहरवाले कैसे सह सकते हैं बता! तुझसे जरा ठण्डे मिजाजसे बात नहीं की जाती ?

ईशान—ठण्डा मिजाज मै रक्खूं कैसे! इन लोगोंका रंगढंग देखकर मेरे तो आग लग जाती है।

बैकुण्ठ—देख, ये लोग हमारे नये रिश्तेदार है। इनका अपमान होनेसे अविनाशके मनको ठेस लगेगी, – वह मुझसे कुछ कह भी न सकेगा और भीतर-ही-भीतर घुलता रहेगा।

ईशान—सो तो मै समझता हूँ, बाबू सा'ब! इसीलिए तो कम-उमरमें ब्याह कर देनेके लिए मै बार-बार कह रहा था। ठीक उमरमें ब्याह हो जाता तो इतनी ज्यादती भी नहीं होती।

बैकुण्ठ—जा अब तू, ज्यादा बकवास न कर, जा। मुझे सब बातें जरा सोच लेने दे।

ईशान—हाँ, सो तुम सोच लो। और मै जो बात कहने आया था, सो मेरी भी सुन लो। बहू-रानीकी चाची न बुआ न-कौन एक बुढिया आई है, सो, नीरु-दीदीको ऐसी तकलीफ दे रही है कि कुछ कहते नहीं बनता। मुझसे तो नहीं सहा जाता।

बैकुण्ठ—अपनी नीरुको! वो तो किसीके किसी बखेड़ेमें रहती नहीं, – फिर क्यों—

ईशान—उन्हें दिन-रात नौकरानीकी तरह काममें जोते रहती है बुढिया; और ऊपरसे तुम्हारा नाम लेकर काले-मुँहकी कहती क्या है कि तुम छोटे भाईकी कमाईपर रईसी किया करते हो! बुढियाके दाँत होते तो, सच कहता हूं बाबू, दारीके दाँत तोड़ देता कुटनेसे।

बैकुण्ठ—नीरु क्या कहती है ?

ईशान—आखिर वो तो अपने बापकी बेटी ठहरी, – चेहरा फूल-सा सूख कर मुरझा जाता है, पर मुंहसे एक बात भी नहीं निकलती—

बैकुण्ठ (कुछ देर चुप रहकर)—एक कहावत है न, 'साँचको आँच नहीं', जो सहता है सो जीतता है—

ईशान—ये सब बड़ी-बड़ी बातें मैं नहीं समझता बाबू सा'ब। मै एक बार छोटे बाबूसे—

बैकुण्ठ—खबरदार इसना! मेरे सरकी कसम है, तैने अगर अविनाशसे कुछ भी कहा तो!

ईशान—तो चुपचाप बैठा रहूँ?

बैकुण्ठ—नहीं, मैंने एक रास्ता निकाला है। यहाँ जगह भी कम है,—इनलोगोंको तकलीफ भी हो रही है,—और फिर अविनाश अब घर-गृहस्थ हो गया है,—उसे रुपये-पैसेकी जरूरत है, उसपर अब मै ज्यादा बोझ नहीं लादना चाहता। मैं यहाँसे चला जाना चाहता हू।

ईशान—सो तो ठीक है, लेकिन—

बैकुण्ठ—इसमें लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, इसना। समय आनेपर तैयारी करनी ही पड़ती है।

ईशान—तुम्हारी पढाई-लिखाई फिर कैसे होगी?

बैकुण्ठ (हँसकर)—मेरी पढाई-लिखाई! लिखना भी कोई काम है! सभी हँसा करते हैं,—मै क्या जानता नहीं, इसना। पोथी-पत्रा सब पड़ा रहने दे यहीं। संसारमें किसीको कुछ लिखने-लिखानेकी कोई जरूरत नहीं, समझा!

ईशान—छोटे बाबूसे तो कह-सुनके ही जाना पड़ेगा?

बैकुण्ठ—तब तो वह हरगिज न जाने देगा। वो तो मुझे 'जाने'की नहीं कह सकता। छिपकर ही जाना पड़ेगा मुझे। बादमें उसे चिट्ठी लिखके बता दूंगा। जाऊं, नीरुसे जरा मिल आऊं। [दोनोंका प्रस्थान

तीनकौड़ी और केदारका प्रवेश

तीनकौड़ी—भाई तुमने मुझे खूब चकमा देकर अस्पताल भेज दिया! लेकिन मै भी वहाँवालोंको चकमा देकर भाग आया। तुमने सोचा होगा कि अस्पतालमें मैं मर जाऊँगा, लेकिन यह हस्ती मिटनेकी नहीं, भाई साहब!

केदार—देख तो रहा हूं सामने, सशरीर विद्यमान है!

तीनकौड़ी—अच्छा हुआ, भाई साहब, जो एक दिन भी देखने नहीं गये, नहीं तो—

केदार—नही तो क्या होता ?

तीनकौड़ी—जमराजने देखा कि इस छोकड़ेका दुनियामें कहीं कोई है ही नहीं, तो उसने भी कदर नहीं की, तुच्छातितुच्छ जानकर घृणासे छोड़ दिया। भाई सा'ब, क्या बताऊं तुमसे, इस तीनकौड़ीके अन्दर कितनी सार-वस्तु है, यह देखनेके लिए मेडिकल कालेजके छोकड़े सब छुरी ताने खडे थे,—देखकर मुझे अहंकार होता था ! खैर, मेरी तो सुन ली, अब तुम सुनाओ अपनी। मालूम होता है अबकी खूब जमके बैठे हो गणेशजी बनकर ?

केदार—जा जा, ज्यादा बकवास न कर। अब यह मेरे रिश्तेदारोंका घर है, मालूम है तुझे ?

तीनकौडी—खूब मालूम है ! मुझसे कुछ छिपा नहीं। लेकिन, बूढ़े बैकुण्ठ बाबूको नहीं देख रहा,—बात क्या है ? उन्हें कहीं बहा दिया क्या ? यही तुममें ऐब है। मतलब निकलते ही—

केदार—तीनकौड़िया ! फिर ! ऐसी कनेठी खायेगा कि याद रखेगा।

तीनकौड़ी—ऐंठ दो, खूब कसके ऐंठ दो कान मेरे। लेकिन सच बात कहे बिना मै नहीं मानूगा। सुनो, बैकुण्ठ बाबूको अगर तुमने धोखा दिया तो अधर्म होगा। मेरे साथ जो-कुछ किया है सो दूसरी बात है।

केदार—अच्छा ! इतनी धर्मकी बातें कहाँसे सीख आया रे ?

तीनकौडी—तुम चाहे कुछ भी कहो,—माना कि अब भी दुनियामें हम-तुम जैसे टिके हुए हैं, फिर भी 'धर्म' नामकी चीज है दुनियामें। देखो केदार-भइया, मै जब अस्पतालमें था तब मुझे बैकुण्ठ बाबूकी बात बराबर याद आया करती थी,—पडा-पड़ा सोचा करता था, तीनकौड़ी नहीं है, अब केदार भइयाके हाथसे बूढ़ेको कौन बचायेगा ? बड़ा दु ख होता था मुझे।

केदार—देख तीनकौड़िया, तू अगर यहाँ मुझे जलाने आया, तो—

तीनकौड़ी—व्यर्थ ही डर रहे हो, भाई साहब ! मुझे अब अस्पताल भेजनेकी जरूरत नही होगी। यहाँ तुम अकेले ही राज्य करना। मै दो

दिनसे ज्यादा कहीं टिक नहीं सकता, – और यह जगह भी मेरे लिए असह्य है—

केदार—तो फिर क्यों झूठमूठको मुझे जला रहा है, – जाना ही है तो दो दिन पहले ही सही—

तीनकौडी—वैकुण्ठका पोथा पूरा बगैर सुने मै यहाँसे नहीं जा सकता। तुम उन्हें जरूर धोखा दोगे, मै जानता हू। तकदीरमें जो होगा सो देखा जायगा, – पूरा पोथा इस अभागेको सुनना ही पडेगा।

केदार (स्वगत)—इस छोकड़ेको मारो चाहे गाली दो, भागनेका यह नाम ही नही लेता। (तीनकौड़ीसे) देख, मुझसे पैसे ले जा, कुछ खा आ बजार जाकर।

तीनकौडी—खानेकी क्यों याद दिला रहे हो भाई सा'ब ?

केदार—भूख लगी है तो खायगा नहीं ?

तीनकौडी—आखिर हुआ क्या है, तुम भी धरमकी बातें करने लगे! अचानक कुछ भला-बुरा हो तो नहीं जायगा ?

केदार—चल, तुझे बजार लिये चलता हू। [दोनोंका प्रस्थान

ईशान और वैकुण्ठका प्रवेश

वैकुण्ठ—मैने सोचा था, किताब इताब कुछ भी साथमें नही लूंगा,– पर सुनके नीरु तो रोने लगी। उसने सोचा होगा कि अपने बुढापेके खिलौने बापूजी कहाँ छोड़े जाते हैं! – चल, उठा, बाँध ले किसीमें। – इसना!

ईशान—क्या बाबू सा'ब!

वैकुण्ठ—छोटोंपर बड़ोंका जितना मोह होता है, बड़ोंपर छोटोंका उतना नहीं होता, क्यों रे, ठीक है न ?

ईशान—यही तो देख रहा हूँ।

वैकुण्ठ—मेरे चले जानेपर अविनाशको कोई खास दु ख तो नहीं होगा, न रे ?

ईशान—मालूम तो ऐसा ही होता है। खासकर—

वैकुण्ठ—हाँ, खासकर उसकी नई गृहस्थी है, – नाते-रिश्तेदारोंकी भी कोई कमी नहीं, – क्यों ठीक है न ?

ईशान—मै भी यही सोच रहा था ।

वैकुण्ठ—शायद नीरुके लिए उसके मनमें, -- नीरुको वह बहुत प्यार करता है, -- करता है न ?

ईशान—पहले तो करते थे, पर अब—

वैकुण्ठ—अविनाशको सब मालूम हो गया है ?

ईशान—और नहीं तो क्या ! वे अगर इस झमेलेमें शामिल न होते तो क्या बुढ़ियाकी हिम्मत पड़ती—

वैकुण्ठ—देख इसना, तेरी बातें बड़ी रूखी होती हैं ! बात क्या करता है हथौड़ा बजाता है ! तू एक-आध मीठी बात बनाकर भी नहीं कह सकता ? बचपनसे मैंने तुझे पालकर आदमी बनाया, एक दिनके लिए भी अलग नहीं होने दिया, – और तू, – क्या नाम है सो – ऐसी बात कहता है कि मेरे चले जानेपर अविनाशको दु ख नहीं होगा ! जा, जा, जा यहाँसे, नालायक कहींका ! मै तेरा मुँह नहीं देखना चाहता । -- कहता है उसने जान बूझकर मेरी नीरुको तकलीफ दी है ! हरामजादे, पाजी कहींका ! तेरी बातें सुनता हूँ तो मेरी छाती फटने लगती है । जा, तू काला मुह कर मेरे सामनेसे—

"मोसे न सही जायँ पराई बतियाँ" गाते-हुए
विपिनका प्रवेश

विपिन (स्वगत)—सोचा था, वापस बुलायेगा । बुलानेका नाम तक नहीं लिया । अरे, यह बुड्ढा तो यहीं है । (वैकुण्ठसे) वैकुण्ठ बाबू, मै अपनी चीज-वस्त लेने आया हूँ । अपना हुक्का और कैम्बिसका बैग भूल गया था । ओ इसना, जल्दी कोई मजदूर तो बुला ला ।

वैकुण्ठ—यह क्या बात ! आप जा क्यों रहे हैं ? यहीं रहिये न । मै आपके हाथ जोड़ता हूँ, मुझे माफ कीजिये वेणी बाबू !

विपिन—वेणी नहीं, विपिन बाबू ।

वैकुण्ठ—हाँ हाँ, विपिन बाबू। आप रहिये, हम इस कमरेको खाली किये देते हैं।

विपिन—इन किताबोंका क्या होगा?

वैकुण्ठ—सब-कुछ हटाये लेते हैं।

[वैकुण्ठ बाबू आलमारीसे किताबें उतारने लगते हैं]

ईशान (स्वगत)—इन किताबोंको बाबू हमारे विधवाके बच्चोंकी तरह प्यार करते थे। अपने हाथसे धूल पोंछते थे,—आज सबको धूलमें फेंके दे रहे हैं! [आँसू पोंछता है]

विपिन—केदारके कमरेमें अफीमकी डिबिया भूल आया हूँ, जाऊं ले आऊँ।—"मोसे न सही जायें पराई बतियाँ, सखी री!" [प्रस्थान

तीनकौड़ीका प्रवेश

तीनकौड़ी—अच्छा हुआ आप मिल गये, वैकुण्ठ बाबू! अच्छे हैं न?

वैकुण्ठ—वाह भई, वाह, तुम खूब आ गये! हो तो मजेमें? बहुत दिनोंसे नहीं देखा तुम्हें?

तीनकौड़ी—कोई बात नहीं,—अब बहुत दिन तक देखा करेंगे। आज मैं पकड़ाई देने आया हूँ,—निकालिये अपनी पोथी, खूब मन लगाके सुनूगा।

वैकुण्ठ—पोथी-ओथी मैंने सब छोड़-छाड़ दी है, तीनकौड़ी,—अब तुम निश्चिन्त होकर यहाँ रह सकते हो।

तीनकौड़ी—तो अब नहीं लिखियेगा?

वैकुण्ठ—नहीं, लिखने-इखनेका खयाल ही छोड दिया।

तीनकौड़ी—सच कह रहे हैं?

वैकुण्ठ—हाँ,—मिट गया शौक।

तीनकौड़ी—ओ फ्, जान बची और लाखों पाये। तब तो मेरी छुट्टी हुई।—मै जा सकता हूँ?

वैकुण्ठ—कहाँ जाओगे तीनकौड़ी?

तीनकौड़ी—अलक्ष्मी जहाँ खदेड़ ले जायें। सोचा था, अभी मियाद-

खतम नहीं हुई,– आपकी पोथी अभी बहुत बाकी है, सब सुनके जाना होगा। खैर, अच्छा ही किया आपने। – तो विदा होता हूँ। प्रणाम।

वैकुण्ठ—अच्छी बात है, बेटा, भगवान तुम्हारा भला करें।

तीनकौडी (स्वगत)—ऊं-हुंक्। भीतरमें कुछ गड़बड़ी मालूम होती है, ठीक समझमें नहीं आ रहा। – भाई ईशान, बहुत दिन बाद तुमसे भेंट हुई, पर तुम तो आज मेरे पीछे डंडा लेकर नहीं पड़े, – बात क्या है ?

अविनाशका प्रवेश

अविनाश—भाई सा'ब, न-जाने कहाँ-कहाँसे तुमने इन-सबोंको यहाँ इकट्ठा किया है, – मेरा तो घरमें टिकना दुश्वार हो गया !

वैकुण्ठ—वे क्या मेरे आदमी हैं, अबू ? तुम्हारे ही तो सब—

अविनाश—मेरे कौन हैं ? मै उन्हें नहीं जानता। सब केदारके रिश्तेदार हैं, – तुम्हींने तो उन लोगोंको जगह दी है घरमें। इसीलिए तो मै उनसे कुछ कह नहीं सकता। अब, तुमसे बने तो सबको सम्हालो, भाई सा'ब, – मै घर छोड़कर जा रहा हूँ।

वैकुण्ठ—जानेकी तो मै सोच रहा था—

तीनकौड़ी—इससे तो अच्छा हो कि वे ही चले जायें जिनकी वजहसे आपलोग जानेकी सोच रहे हैं। आप दोनों चले जायेंगे तो यहाँ उनलोगोंकी खातिरदारी कौन करेगा ?

अविनाश—घरके अन्दर कौन-तो एक बुढिया आई है, उसने नाकमें दम कर रखा है सबके ! कोई नौकरानी तक नही टिकने पाती। सब-कुछ सहा है मैने, – पर आज मैंने अपनी आँखोंसे बुढियाको नीरुपर हाथ उठाते देखा है ! – अभी-अभी उसे मै गंगा पार पहुंचाके आ रहा हू।

ईशान—जीओ छोटे बाबू, जीओ ! हजारकी उमर हो तुम्हारी !

वैकुण्ठ—लेकिन वे तो बहूकी कोई लगती थीं न, – उन्हें—

तीनकौड़ी—कोई नहीं लगती,– बुढिया केदार-भइयाकी बुआ है। उस डाइनसे व्याह करके केदारके फूफा ही नहीं जी सके, औरकी तो बात क्या !

विधवा होकर मायके गई तो भाईको टूंग लिया। आखिरमें जब देखा कि खुद अपनी जानके लाले पड़े हैं तो केदारने उस जमकी नानीको तुमलोगोंके घर ला पटका!

अविनाश—भाई सा'ब, अपनी ये किताबें तुम नीचे क्यों उतार रहे हो? तुम्हारी टेबिल कहाँ गई?

ईशान—इस कमरेमें जो बाबू रहते हैं, किताब रहनेसे उन्हें तकलीफ होती है, - इसलिए बड़े बाबूको उन्होंने नोटिस दिया है—

अविनाश—क्या! भाई सा'बको कमरा छोड़ना पड़ेगा!

विपिनका प्रवेश

विपिन—"मोसे न सही जायँ पराई बतियाँ"—

अविनाश (खदेड़ते हुए)—निकलो, निकलो, निकलो यहाँसे! अभी निकलो, निकल जाओ—

वैकुण्ठ—अरे-रे, तू कर क्या रहा है! बेणी बाबूको—

विपिन—बेणी बाबू नहीं, विपिन बाबू—

वैकुण्ठ—हाँ, विपिन बाबूको बेइज्जत कर रहा है! तुझे हो क्या गया!—

तीनकौड़ी—केदारको बुला लाना चाहिए, - इस तमाशेको तो देख जाय जरा। [प्रस्थान

[ईशान विपिनको जबरदस्ती निकाल देता है]

विपिन—अरे भई ईसना, एक मजदूर तो बुला देता, - मेरा हुक्का और पैम्बिमरा बंग— [प्रस्थान

वैकुण्ठ—इसना, हरामजादा कहींका, - तैंने एक शरीफ आदमीका, - तुझे आज—

ईशान—आज मुझे मारो, गाली दो, जो खुशी आवे सो करो, मैं कुछ नहीं कहनेका। आज मेरा जी बहुत खुश है!

केदारको साथ लेकर तीनकौड़ीका प्रवेश

केदार—क्या नाम उसका – अविनाश, मुझे बुला रहे थे ?

अविनाश—जी हाँ, – तुम्हारे लिए ठठरी तैयार है, पधारिये !

केदार—तुम्हारा मजाक,–क्या नाम उसका–औरोंसे बड़ा कड़ा होता है !

वैकुण्ठ—ओ-हो-हो, -- तुझे आज हो क्या गया, अविनाश ! – केदार बाबू, आप कुछ खयाल न करें, अभी उद्धत अवस्था है, – अपने रिश्तेदारोंसे कैसा बरताव किया जाता है, कुछ नहीं जानता—

अविनाश—सब जानता हूं। आज सबको निकाल बाहर करता हूँ—

तीनकौड़ी—आप सामनेके दरवाजेसे निकालियेगा तो ये पीछेके दरवाजेसे घुस आयेंगे, – इन्हें आप पहचानते नहीं। जरा सावधान रहियेगा—

अविनाश—अब तुम्हारा भी नम्बर आ रहा है, घबराओ नहीं—

तीनकौड़ी अह-हह, सबको एक रास्तेसे न बहाइये, – सब ग्रहोंका इकट्ठा होना ही खतरनाक है।

केदार—अविनाश, – क्या नाम उसका – तो मेरे लिए 'करकमलों'की जगह 'चरण-तले' ही तय किया तुमने, क्यों ?

अविनाश—हाँ, -- जहाँ जिसकी जगह हो—

केदार—भाई इशनू, तो फिर जाओ, एक अच्छा-सा ताँगा तो ला दो—

तीनकौड़ी—मैंने सोचा था, अबकी शायद अकेले ही निकलना पड़ेगा, – आखिर तुमने भी साथ दिया ! बराबर देखता आ रहा हूं, तिनकौड़ियाको सब छोड़ देते हैं, पर तुम नहीं छोड़ते। जानता हूं न, इसीसे निश्चिन्त हूं।

केदार—तिनकौड़िया ! फेर !—

वैकुण्ठ—केदार बाबू, आप अभी जा रहे हैं ! ठहरिये जरा, थोड़ा-सा जलपान करते जाइये—

तीनकौड़ी—इसमें क्या है, हमें कोई जल्दी नहीं है।

वैकुण्ठ—इसना !

वि० सं० १९५३]

स्वर्गीय प्रहसन

इन्द्र-सभा

बृहस्पति—हे सौम्य, तेतीस करोड़ देवताओंसे भी क्या इन्द्र-लोक परिपूर्ण नहीं हुआ ? और भी क्या नये देवताओंको बुलानेकी आवश्यकता है ? हे प्रियदर्शन, स्मरण रखना, जन्म-मृत्युके द्वारा मर्त्यलोककी जनसंख्या नियम-शासनमें बद्ध रहती है ; किन्तु स्वर्गलोकमें मृत्युका अभाव होनेसे देव-संख्या ह्रास करनेका कोई उपाय नहीं है ! अतएव, संख्या वृद्धि करनेके पहले पूर्वापर सब बातोंपर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए।

इन्द्र—हे सुरगुरो, स्वर्गका मार्ग दुर्गम करनेके लिए स्वर्गाधिपतिकी ओरसे चेष्टामें कोई त्रुटि नहीं, यह बात सर्वजन-विदित है।

बृहस्पति—हे पाकशासन नाकपते, तो फिर आजकल देवलोकमें मनसा शीतला 'घेंटू'* नामधारी अज्ञात-कुलशील नवीन देवी-देवताओंका अभिषेक क्यों हो रहा है ?

इन्द्र—द्विजोत्तम, हम देवोंको त्रिभुवनका कर्तृत्व-भार अवश्य प्राप्त हुआ है, किन्तु यह हुआ है त्रिभुवनकी सम्मतिसे ही। यह बात गुरुदेवसे छिपी नहीं कि मर्त्यलोकमें ही देवताओंका निर्वाचन हुआ करता है। किसी समय आर्यावर्तके समस्त ब्राह्मण होताओंने मुझ ही को स्वर्गका प्रधान-पद दिया था, और उस समय सरस्वती-दृशद्वतीके तटपर प्रत्येक यज्ञ-हुताशनमें मेरे लिए अहोरात्र जो हवि समर्पित किया जाता था उसके होम-धूमसे मेरे सहस्र लोचनोंसे निरन्तर अश्रु प्रवाहित होते थे। किन्तु आज नरलोकमें हवि-घृत केवल जठरयज्ञमें क्षुधासुरके लिए ही उपहृत हुआ करता है, और सुनते हैं कि वह घृत भी विशुद्ध नहीं है।

बृहस्पति—वृत्रनिसूदन, उस अपवित्र मिश्रित घृतको पी-पीकर, सुनते हैं कि क्षुधासुर मृतप्राय हो गया है। हे शक्र, देवताओंके प्रति देवदेवकी विशेष कृपा होनेसे ही नरलोकमें होमाग्नि निर्वापित हुई है, अन्यथा नव्य गव्य

* 'घेट्टू'=घण्टाकर्ण : चर्मरोगके देवता।

परिपाक करनेके लिए, भो पाकशासन, देव-जठरका समस्त अमृत-रस सुतीव्र अम्ल-रसमें परिणत हो जाता, अग्निदेवके मन्दाग्नि हो जाती और वायुदेवके लिए वायु-परिवर्तनकी आवश्यकता होती ; और समस्त देवताओंके अमर वक्ष स्थलमें असह्य शूल-वेदना अमर होकर वास करने लगती।

इन्द्र—हे ज्ञानिश्रेष्ठ, उक्त घृतके गुणागुण मुझसे छिपे नहीं हैं, कारण यमराजसे सर्वदा ही मै उसका विवरण सुना करता हूँ। अतएव, हव्य पदार्थोंपर मेरा किंचित् भी लोभ नही ; और हमाग्निके तिरोधानके सम्बन्धमें भी मुझे कोई चिन्ता नहीं। मेरा वक्तव्य यह है कि जिस प्रकार पुष्पसे सौरभ निकलता है उसी प्रकार मर्त्यकी भक्तिसे ही स्वर्ग ऊर्ध्वलोकमें उद्वाहित होता रहता है, वह भक्ति-पुष्प यदि सूख जाय तो, हे द्विजसत्तम, तेतीस कोटि देवता मेरे इस पारिजात-मोदित नन्दनवन-वेष्टित स्वर्गलोककी रक्षा नहीं कर सकते। इसीलिए, मर्त्यके साथ योग-प्रवाह चालू रखनेके लिए बीच-बीचमें नरलोकके निर्वाचित देवी-देवताओंको आदरके साथ स्वर्गमें आवाहन करना पड़ता है। हे, त्रिकालज्ञ, स्वर्णके इतिहासमें ऐसी घटनाएँ इसके पहले भी हो चुकी हैं।

बृहस्पति—मेघवाहन, स्वर्गका इतिहास मुझसे छिपा नही है। किन्तु इसके पहले जितने भी नवीन देवी-देवता मर्त्यसे स्वर्गलोकमें उन्नीत हुए हैं वे अभिजात देवताओंके साथ एकासनपर बैठने-योग्य थे। किन्तु सम्प्रति मनसा शीतला घण्टाकर्ण आदि जो देवी-देवता तुम्हारे आमन्त्रणसे स्वर्गमें आये हैं उन-सबोंने सुर-सभाकी दिव्यज्योतिको म्लान कर दिया है। अदितिनन्दन, मेरा प्रस्ताव यह है कि उनके लिए एक उपदेवलोककी सृष्टि करनेके लिए विश्वकर्माको आदेश दिया जाय।

इन्द्र—बुधप्रवर, तब तो फिर वह उपसर्ग ही स्वर्ग हो उठेगा, और स्वर्ग उपसर्गमें परिणत हो जायगा। हमारा स्वर्ग एकमात्र वेदमन्त्रो-द्वारा प्रतिष्ठित है। जर्मन-देशीय पण्डितों द्वारा बहुल चेष्टा होनेपर भी उन मन्त्रों और मन्त्रार्थोंको सब-कोई भूलते जा रहे हैं। किन्तु हमारे नवीन आमन्त्रित देवी-देवतागण सायनाचार्यके भाष्य, पाश्चात्य-देशीय ऐतिहासिकोंके

पुरातत्त्व अथवा उनके प्राच्य-शिष्यवर्गकी वैज्ञानिक व्याख्यापर निर्भर नहीं करते, वे प्रतिदिनकी सद्य-आहरित पूजा प्राप्त होकर उपवासी पुरातन देवी-देवताओंकी अपेक्षा कई-गुने प्रबल हो उठे है। उन्हें अपने पक्षमें पा-जानेसे हम नया बल प्राप्त कर सकेंगे। अतएव, गुरुदेव, प्रसन्न चित्तसे उनके गलेमें देव-माल्य अर्पण करके उन्हें स्वर्गलोकमें वरण कर लीजिये।

बृहस्पति—अहो दुर्वृत्ता नियति! आज मर्त्यलोकके प्रसाद-लाभकी लालसामें न-जाने कितने पुरातन देवकुल-प्रदीप क्रमश· अपनी देव-मर्यादा विसर्जित करते जा रहे है, कोई सीमा नहीं। देव-सेनापति कार्तिकेय अपना वीर-वेश त्यागकर, सूक्ष्म - वसन - भूषणसे विभूषित हो, कामिनी-मनोमोहनके लिए निर्लज्ज प्रणयी छैला बने फिर रहे हैं! गम्भीर-प्रकृति गणपति कदलीतरुके साथ गोपन परिणय-पाशमें फँस गये हैं, और महायोगी महेश्वर गंजिका-धुस्तर-विजया पानसे उन्मत्त होकर, महादेवीके साथ आश्राव्य भाषामें कलह करके, निम्न-जातीय स्त्री-पल्लीमें अपना विहार-क्षेत्र विस्तार कर रहे हैं। ये सब बातें जब एक-एक करके सभी सह ली हैं तो, सम्भव है, देवासनपर उपदेवताओंका अधिरोहण-दृश्य भी इस वृद्ध ब्राह्मणके धैर्यकठिन वक्ष स्थलको सहजमें विदीर्ण नहीं कर सकेगा।

चन्द्रका प्रवेश

इन्द्र—भगवन् ऊडुपते, स्वर्गलोकमें तो कृष्णपक्षका प्रभाव नहीं, तो फिर आज तुम्हारी सौम्य-सुन्दर-प्रफुल्ल मुखच्छविपर अंधकार क्यों छाया हुआ है!

चन्द्र—देव सहस्रलोचन, स्वर्गमें कृष्णपक्ष होता तो अमावस्याकी छायामें मैं आनन्दसे आश्रय ग्रहण कर लेता। देवराज, देवी शीतलाकी प्रसन्न दृष्टिसे मुझे निष्कृत दान करो। जबसे उन्होंने स्वर्गमें पदार्पण किया है तबसे मेरे प्रति वे जैसा विशेष पक्षपात कर रही हैं, अकेला मैं उसके योग्य नहीं। उनका वह प्रचुर अनुग्रह देव-साधारणमें समानरूपसे विभक्त हो जाय तो किसीके प्रति अन्याय न हो।

इन्द्र—सुधांशुमालिन्, इसमें सन्देह नहीं कि अपने सुहृदोंमें बाँटकर भोग

किया जाय तो अधिकाश आनन्द ही बढ जाता है, किन्तु रमणीका अनुग्रह उस जातिका नहीं होता।

चन्द्र—भगवन्, तो उस आनन्दको तुम्हीं सम्पूर्णरूपसे ग्रहण करो। तुम सुरश्रेष्ठ हो, इस सुखावेगको तुम्हारे सिवा और-कोई भी एकाकी नहीं सम्हाल सकेगा।

इन्द्र—प्रिय सखे, अन्य किसीसे जो-कुछ भी प्राप्त हो उसे बन्धुको प्रदान करना कठिन नहीं, किन्तु प्रेम वैसी सामग्री नहीं, तुम्हें जो-कुछ मिला है उसे तुम अनादरसे फेंक दे सकते हो, किन्तु अपने प्रियतम मित्रकी अत्यावश्यकताकी पूर्तिके लिए भी उसे दान नहीं कर सकते।

चन्द्र—यदि फेंक दे सकता तो विपन्न-भावापन्न होकर तुम्हारे द्वारपर न आता। सुरपते, अनेक सौभाग्य ऐसे हैं जो दूर निक्षेप करनेपर भी बार-बार निकट आकर संलग्न हो जाते हैं।

इन्द्र—शशलाञ्छन, तुम क्या अपयशका भय करते हो?

चन्द्र—सखे, सत्य कहता हूं, कलङ्कका भय मुझे नहीं है।

इन्द्र—कलानाथ, तो क्या तुम्हें अपनी अन्त पुरलक्ष्मी प्रियतमाके डाहकी आशंका है?

चन्द्र—प्रिय बन्धो, तुमसे मेरी कोई बात छिपी नहीं है, सप्तविंशति नक्षत्र-नारियोंको लेकर मेरा अन्त पुर है। उनमेंसे प्रत्येक समस्त रात्रि अनिमेष-नेत्रोंसे जाग्रत रहकर मेरी गतिविधिका निरीक्षण करती रहती है, तथापि आज तक नक्षत्रलोकमे किसी प्रकारकी अशान्तिका कारण उपस्थित नहीं हुआ। उन सत्ताईसके साथ और-एक जोड़ देनेमें मुझे कोई भय नहीं।

इन्द्र—सखे, धन्य है तुम्हारे साहसको! – फिर भय किस बातका है?

अत्यन्त चांचल्यके साथ देवदूतका प्रवेश

दूत—'जयोस्तु! देवराज, वाणी वीणापाणि स्वर्ग त्याग जानेकी कल्पना कर रही हैं।

इन्द्र—कारण? देवगण उनके समक्ष किस कारणसे अपराधी हुए हैं?

दूत—मनसा शीतला मंगलचंडी नाम्नी देवीगण सरस्वतीके कमल-वनमें चिङ्गटी नामक कर्दमचर मत्स्यके सन्धानमें गई थीं। किन्तु कृतकार्य न होकर उनलोगोंने कमलकलिकाओंसे अपने अंचल भर लिये, तटपर बैठकर तिन्तिड़ीके साथ कटु-तैलमें अम्ल-व्यंजन रन्धन किया, और प्रचुर परिमाणमें आहार किया, और अन्तमें सरोवरके जलमें पित्तलस्थालियाँ मार्जनपूर्वक अपने-अपने स्थानको चली गईं। आज तक मानससरोवरकी पद्म-कलिकाका देव-दानव किसीने भी आहारके रूपमें व्यवहार नहीं किया।

[देवोंका परस्पर मुखावलोकन]

'घेंटू' और मनसा आदि देव-देवियोंका प्रवेश

इन्द्र (आसनसे उठकर)—देवगण और देवीगण, स्वागतम्। आप सब सकुशल हैं तो? स्वर्गलोकमें आपको किसी भी प्रकारका अभाव तो नहीं? अनुचरगण सावधान होकर सर्वदा आपका आदेश पालनके लिए प्रस्तुत रहते हैं न? सिद्ध-गन्धर्वगण नृत्यशालामें नृत्य-गीतादि द्वारा आपका मनोरंजन करते रहते हैं न? कामधेनुका दुग्ध और अमृतरस यथासमय आपके समक्ष आहरित होनेमें कोई त्रुटि तो नहीं होती? नन्दनवनका सौरभ-समीरण आपकी इच्छाका अनुगामी बनकर वातायन-पथसे प्रवाहित होता रहता है न? आपके लता-निकुंजमें पारिजात सर्वदा प्रस्फुटित रहकर शोभा दान किया करता है तो? [देवियोंका उच्चहास्य]

मनसा (घण्टाकर्णके प्रति)—यह मुआ क्या बक रहा है जी?

घेंटू—पुरोहितजीकी तरह कुछ मंतर-वन्तर पढ रहा है। (इन्द्रके प्रति) अजी ओ, तुम्हीं शायद यहाँके मालिक हो! तुम्हारा मंतर पढ़ना खतम हुआ हो तो, तुमसे मै कुछ बातें कहना चाहता हूं।

इन्द्र—हे घेंटो, आप—

घेंटू—'घेंटो' क्या? मै क्या तुम्हारे बगीचेका माली हूं! अपने बाप-जनममें ऐसा अभद्र आदमी तो मैने कहीं नहीं देखा! 'घेंटो'! मै अगर तुम्हें 'इन्दर' न कहके 'इन्दुरो' कहूं तो!

मनसा—तो जैसेको तैसा मिल जाय। [देवियोंका उच्चहास्य]

इन्द्र (हँसीमें सम्मिलित होनेकी चेष्टा करते हुए)—हे कुन्दाभदन्ति, बहु तपस्याके द्वारा मैने स्वर्गलोक प्राप्त किया है , किन्तु किस सुकृतिके फलसे आप-सबके स्मितदर्शन-मयूखसे स्वर्गलोक अकस्मात् अतिमात्रामें आलोकित हो उठा, अभी तक इसकी मुझे कुछ धारणा ही नहीं हुई !

घेंटू—अरे छोडो, इन बातोंमें क्या रक्खा है ! तुम्हारे पियादे सोनेके प्यालेमें न-जाने क्या लाया करते हैं, मै उसे छू भी नहीं सकता । अपनी शची-दुलहिनसे कह देना, मेरे लिए रोज एक थाल भरकर गोबरके लड्डू बनाकर भेज दिया करे ।

इन्द्र—तथास्तु । स्वर्गमें हमारे यहाँ कल्पधेनु हैं । वे सबकी सभी कामनाएँ पूर्ण किया करती हैं । सम्भव है, आपकी प्रार्थना पूर्ण करना उनके लिए दु साध्य न होगा ।

शीतला (चन्द्रको एक कोनेमें गुप्तप्राय देखकर उनके पास जाकर)—मेरी सौगन्द, तुम इतने नखरे जानते हो कि कुछ कह नही सकती ! मुझे खूब हैरान किया, वाह ! मै समझी कि शायद तुम बिस्तरपर जाकर सो गये होगे । भीतर जाकर देखा तो अश्लेषा और मघा नवाबजादी बनी बैठी है ! मुझे देखते ही दारियोंके होश उड गये । गुमसुम देखकर मुझसे सहा नहीं गया । मैने कहा, 'अरी ओ अमीरकी बेटियो, तुम्हें मेहनत करके नहीं खाना पडता, सो इसका इतना दिमाग कि जमीनपर पाँव ही नहीं पड़ते !' मुझे जो कुछ कहना था, सब कह आई । ऐसा धुआँधार मचा आई हूं कि जाओगे तो पता चलेगा !

चन्द्र (इन्द्रके पास जाकर)—हे शचीपते, सप्तविंशतिपर अष्टविंशतितम योग करनेसे कैसा दुर्योग उपस्थित हो सकता है, सो अब तो प्रत्यक्ष देख लिया ! (शीतलाके प्रति) अयि अनवद्ये !

शीतला (हँसीके मारे लोटपोट होकर)—हाय मेरी अम्मा, तुम तो मुझे हँसाते-हँसाते मार डालोगे ! प्यारका नाम क्या रक्खा, जान ले ली मेरी तो !

घेंटू (इन्द्रके पास जाकर उनकी पीठपर हाथ रखकर)—कहो जी इन्दर दादा, चुप कैसे रह गये ! रातको भाभीसे कुछ ज्यादा तकरार हो गई थी क्या ?

इन्द्र (मारे संकोचके सिकुड़कर घेंटूको दूरका आसन दिखाते हुए)—देव, आसन ग्रहण करनेकी आज्ञा हो।

घेंटू—है न, यहाँ काफी जगह है। (इन्द्रके साथ एकासनपर बैठकर) भाई सा'ब, मेरे साथ तुम ऐसी तकल्लुफकी बातें न किया करो। आजसे तुम मेरे भइया हो, मै तुम्हारा छोटा भाई हूं घेंटू।

[घेंटू इन्द्रके गलेमें बाँह डालकर लिपट जाता है और इन्द्रके कण्ठसे एक तरहका करुणास्वर निकल पड़ता है]

शीतला (चन्द्रके प्रति)—तुम जा कहाँ रहे हो ?

चन्द्र—मनोज्ञे, आज अन्त पुरमें देवियोंने भर्तृ-प्रसादन-व्रतमें अपने इस सेवकाधमको स्मरण किया है, अतएव यदि अनुमति हो तो, हरिणशालीन-नयने—

शीतला—क्या कहा ! साली ? अच्छा तो साली ही सही। तुम्हारे चाँद-मुंहसे मुझे सब अच्छा लगता है। अच्छा तो, साली कहा है तो कनेठी भी खा लो। [चन्द्रके पास एकासनपर बैठकर उनके कान ऐंठती है]

इन्द्र (चन्द्रके प्रति)—भगवान् सितकिरणमालिना, तुम्हीं धन्य हो। करुण-स्पर्शसे तरुणी-कर-किसलयका अरुण राग अभी तक तुम्हारे कर्णमूलमें लगा हुआ है।

शीतला (मनसाके प्रति लक्ष्य करके स्वगत)—मरी, मरी ! डाहसे छाती फटी जा रही है दारीकी ! मै चाँदके पास आ बैठी हू, सो उससे सहा नहीं जा रहा। घूर-घूरकर देख रही है और हिरनी सी फिर रही है। इतने आदमियोंके बीच जरा भी शरम नहीं। जरूर मुहल्लेमें जाकर तरह-तरहकी कानाफूसी करेगी। लेकिन जरा अपनी सूरत भी तो देख ! उस दिन कातिकको लेकर ऐसा वेहयापन किया कि मुझ-सी हो तो मुँह न दिखावे। बेचारे कातिकको कहीं छिपनेकी जगह नहीं मिली। ये तो शकल है, उसपर नखरे देखो ! हाय राम, देखो जरा ! (प्रगटमें) मर कलमुँही, चाँदके सामने इस तरह वेहयापन ! पी जायगी क्या ! कातिकके यहाँ जगह नहीं मिली क्या !

सुर-सभामें मनसा और शीतलका ग्राम्य भाषामें
जोरका झगड़ा होने लगता है

इन्द्र (घबराकर एक बार मनसासे और एक बार शीतलासे)—क्रोध शान्त करो, देवी, क्रोध शान्त करो। अयि असूयाताम्रलोचने, अयि गलद्वेणीबन्धे, अयि विगलितदुकूलवसने, अयि कोकिलजितकूजिते, कण्ठस्वरको सप्तमसे पंचममें उतार लाओ। अयि कोपने—

घेंटू (उत्तरीय थामकर इन्द्रको आसनपर बिठाते-हुए)—तुम घबराते क्यों हो, भाई सा'ब! इनमें रोज यही हुआ करता है। अभी, होती कहीं ओला-बीबी, तो मामला और भी डटके जमता। उसकी खुराकमें क्या-तो गड़बड़ी हो गई थी, सो गई वह है शचीसे लड़ने।

इन्द्र (व्याकुल होकर)—हा सुरेन्द्र-वक्षोविहारिणी देवी पौलमी!

मनसा तेजीसे सभासे बाहर निकल जाती है
और शीतला पुन. चन्द्रके पास बैठ जाती है

वीणापाणिका प्रवेश

वीणापाणि—देवराज, कर्कश कोलाहलसे मेरी देव-वीणाका स्वर स्खलन हो रहा है, - मेरा कमलवन शून्यप्राय है, मैं देवलोकसे विदा होती हूं। [प्रस्थान

बृहस्पति—मै भी जननी वीणाका अनुगमन करता हूं। [प्रस्थान

अश्लेषा और मघाका प्रवेश

अश्लेषा और मघा (चन्द्रके साथ एकासनपर शीतलाको देखकर)—आज तो हम अपूर्व सुन्दर और अभिनव सप्तदशम कलामें देव शशधरको समधिक शोभायमान देख रही हैं!

चन्द्र—देवीगण, इस हतभाग्यको अब और अधिक अकरुण परिहाससे विडम्बित न करो। पुरुष-राहु मुझे केवल क्षणमात्रके लिए पराभूत कर सकता है, उस आक्रोशसे ईर्षान्वित होकर भगवानने एक स्त्री-राहुका सृजन किया है, उसके पूर्णग्राससे मैं अनेक चेष्टा करनेपर भी अपनेको मुक्त नहीं कर पा रहा हूं।

अश्लेषा—आर्यपुत्र, यह भद्रललना अनतिकाल पहले तुम्हारे अन्त पुरमे प्रवेश करके तुम्हारे श्वशुर-कुलके ऊर्ध्वतन चतुर्दश पूर्वजोंको अश्रुतपूर्व कुत्सित भाषामें लज्जित कर आई हैं। देवीके इस आश्चर्यमय व्यवहारको तब हम अधिकार-बहिर्भूत उपद्रव जानकर आश्चर्यचकित हो गई थीं, किन्तु अब स्पष्ट समझमें आ रहा है कि सौभाग्यवतीको तुम्हारे ही हाथसे हमें अपमानित करनेका अधिकार प्राप्त हुआ है। अब हम अपने आर्यपुत्रको उनके नवीनतर श्वशुर-कुलमें वरण करके, नक्षत्रलोकसे विच्युति-लाभके लिए चल दीं। (शीतलाके प्रति) भद्रे, कल्याणी, तुम्हारा सौभाग्य अक्षय हो। [प्रस्थान

शचीका प्रवेश

इन्द्र (सम्भ्रमके साथ आसन छोड़कर)—आर्ये, शुभ आगमन हो।

घेंटू (उत्तरीय थामकर इन्द्रको जबरदस्ती आसनपर बिठाकर)—ओ हो! बड़ी जोरकी खातिर की जा रही है! तुम्हारी कसम, भइया, बहुतेरे मर्द देखे हैं मैंने, पर तुम्हारी तरह, – क्या बताऊँ!

[घेंटूको इन्द्रके बाईं ओर अपने लिए निर्दिष्ट स्थानपर बैठा देख शचीदेवी दूर एक कोनेमें जाकर बैठ जाती है]

घेंटू (शचीके पास जाकर हँसता-हुआ)—भाभीजी, भाई सा'बपर आपने क्या जादू कर दिया है बताओ तो! बिलकुल श्रीचरणोंका गुलाम बना रखा है! तुम उठती हो तो उठते है, तुम बैठती हो तो बैठते हैं। अजी, कुछ बोलो भी तो! (गाना शुरू कर देता है) – "बोलो, कुछ तो बोलो, इन ओठोंको तो खोलो!"

न्द्र—देव घेंटो! किंचित् अवसर देनेकी आज्ञा हो। देवीसे मुझे कुछ निवेदन करना है।

घेंटू—ओफ्हो! देखना जरा! जरा-सा पास आकर बैठा हू, सो सहा नहीं गया! इतनी जल्दी क्या है! कहावत है न, 'दूधका जला—' खैर। तुम दोनों बैठो, मै जाता हू। पीछे कहीं श्राप-श्राप दे दिया तो मुसीबत होगी।

[जबरदस्ती इन्द्रको शचीके आसनपर बिठानेकी चेष्टा करता है]

इन्द्र (घेंटूको दूर हटाकर)—देव, तुम आत्मविस्मृत हो रहे हो !

ओला-बीबीका प्रवेश

ओला-बीबी (शचीके प्रति)—सो ही तो मैंने कहा कि यह जा कहाँ रही है ! चटसे शौहरसे भिड़ाने चली आई ! भिड़ा, भिड़ा, चुगलखोर कहींकी ! तेरे खसमका मुझे डर लगा है क्या !

शची (आसनसे उठकर इन्द्रके प्रति)—देवराज, मैंने जयन्तके साथ विष्णुलोकमें जाकर कुछ दिन लक्ष्मीदेवीके आलयमें वास करनेका संकल्प किया है। बहुत समयसे देवीके दर्शन नहीं हुए।

इन्द्र—आर्ये, मैं भी देवीका अनुसरण कर रहा हूं। बहुत समयसे पूजाका अवसर न मिलनेसे चक्रपाणिके समक्ष मैं अपराधी बना हुआ हूं।

[दोनोंका प्रस्थान

चन्द्र—देव सहस्रलोचन, विष्णुलोकमें मेरा गमन भी अत्यावश्यक है।

लक्ष्मीदेवी—। हाय, विपत्तिकालमें बान्धव भी साथ त्याग देते हैं !

शीतला—ऐसा हँड़िया-सा मुँह किये क्यों बैठे हो ? ऐसा मुँह बनाये रहोगे तो फिर कनेठी खाओगे !

चन्द्र—स्फुरत्कनकप्रभे, विष्णुलोकमें मुझे अधिक विलम्ब न होगा,—यदि अनुमति हो तो दास—

शीतला—फिर ! कनेठी खानेकी मनमें है क्या ? [कान ऐंठनेको उद्यत]

मनसाका पुनःप्रवेश और शीतलाके साथ पुनः कलह आरम्भ, और उसमें घेंटू ओला मंगलचंडी आदि सबका सम्मिलित होना

चन्द्र—आपलोग तब तक मिष्टालाप कीजिये, दास विष्णुलोककी ओर प्रयाण करना चाहता है। [तेजीसे प्रस्थान

वि० सं० १९६४]